संस्कृतसोपानम्

(प्रथमो भागः)

क्षेत्रेशचन्द्र-चट्टोपाध्यायः, एम्० ए० (Alld. & Cal.)
प्रयागविश्वविद्यालये संस्कृताध्यापकः,

तथा

रामनरेश-मिश्रः, एम्० ए०, साहित्यशास्त्री, साहित्याचार्यः,
लक्नौ-कल्विन्-तालूकदार-हाई-स्कूले संस्कृताध्यापकः
इत्येताभ्यां संकलितम्

इंडियनप्रेस-लिमिटेड-प्रयागे मुद्रितम्

१९५४

मूल्यम् ॥-)

PREFACE

In offering two Readers for use in the schools of these provinces for the beginners in Sanskrit, I beg to point out that I have strictly followed the new syllabus of the Intermediate Board in compiling the books According to the new syllabus Sanskrit teaching will commence at Standard VII instead of Standard VI and as such the boys will have to be given a good grounding in Sanskrit in two years The change made by the Committee is for the better, as by commencing to learn a difficult language a year later they will be able to understand it better and consequently their progress will be more rapid

It will be found that all the reading lessons the books contain are classical pieces A word by way of explanation may be said here why the beaten track has not been followed When I joined the Allahabad University as a teacher of Sanskrit a few years ago, I found the students using Hindi expressions in their composition On my challenging them they referred me to text-books which they read in their schools Right or wrong, anything seen in print in a text-book is taken by the boys to be absolutely correct As such the responsibility of a text-book writer is very great Unless an author is a master of the language in which he writes, he should not include his own compositions in a book A number of passages may be quoted as instances of bad grammar and composition from the text-books in use Although there is no dearth of authors who can write faultless Sanskrit, once permission is given to insert original compositions into text-books, authors qualified and unqualified will come forward with their writings, and it may so happen that some of the books prescribed will have faulty passages which the Text-Book Committee would not like

For the reasons stated above, I have drawn all th reading lessons from the classical works The p ' . . work of compiling was done by my pupil Pt Rāmana Miśra, M A, but I revised, altered and rewrote passa wherever necessary In the few reading lessons given i the Praveśikā of Part I, many short sentences had to b newly composed because at this stage it is impossible f the young learners to understand the difficult senten from a standard work But here too I have taken spec care to quote sentences from standard works wherev possible Matter for the reading lessons in the Pāthāvali have been all taken from the Hitopadeśa, the Pañcatantra and the Purusaparīkṣā but I have tried to simplify passages which seemed to be difficult for the beginners I have almost always avoided *sandhi* at the beginning, but still I insist on the careful teaching of the rules of *sandhi* to the students at a very early stage and have myself appended to the lessons searching questions on *sandhi*, along with other grammatical questions I lay emphasis on the critical questions which are meant for enabling the students to converse in simple Sanskrit, as required by the syllabus. The teachers may add freely to these questions

No attempt has been made to show learning in these books to confound the boys Simple and clear expressions have throughout been used to help the young learners Such matter as the student is expected to learn in the grammar of his own language has not been touched in the book Grammar has been explained in Hindi, which is the medium of instruction in most of the U P schools But if any school, which teaches through some other medium, likes to use these Readers, the teacher should explain the rules in the language of the student

30th March, 1930
University of
Allahabad

KSHETREŚACHANDRA CHATTOPĀDHYĀYA

सूचीपत्रम्

प्रवेशकः

पाठः			पृष्ठम्
प्रथमः पाठः		.	१
वर्णमाला		..	१
वर्णोच्चारणस्थानानि			२
द्वितीयः पाठः	.	.	३
तृतीयः पाठ		.	४
चतुर्थ· पाठः	. ..	..	५
पञ्चम. पाठः	... ...	..	८
षष्ठः पाठः	... .	...	१०

पाठावली

पाठः विषयः			पृष्ठम्
१—पथिक-व्याघ्र-कथा	...	..	१७
२—गर्दभ-शृगाल-कथा	.	..	१८
३—त्रयाणां मत्स्यानां कथा	..	.	२०
४—बक-कुलीरक-कथा	...	...	२२
५—व्याघ्रचर्मावृतगर्दभ-कथा	...	...	२४
६—मुनि-मूषक-कथा	...	..	२५
७—राज-वानर-कथा	...	..	२६
८—जामातृ-चतुष्टय-कथा	...	..	२७
९—कुक्कुर-गर्दभ-कथा	...	...	२८
१०—शृगाल-दुन्दुभि-कथा	...	..	३०

पाठः	विषयः		पृष्ठम्
११—सिंह-मूषक-बिडाल-कथा	...	..	३२
१२—ब्राह्मण-नकुल-कृष्णसर्प-कथा	..	.	३३
१३—घण्टा-वानर-कथा		..	३५
१४—ब्राह्मण-कर्कट-कथा	...	.	३६
१५—मूर्खोपदेश-फलम्	..	...	३८
१६—मूषकभक्षितलौहतुला-कथा	..	...	३९
१७—सिंह-शश-कथा	...	..	४२

व्याकरणम्

विषयः				पृष्ठम्
सन्धिः	...	...	..	१
अच्सन्धिः	..	...	...	२
हल्सन्धिः	...	...	..	६
विसर्गसन्धिः	..	.	..	१०
शब्दरूपाणि		...	...	१४
पुंलिङ्गशब्दरूपाणि		...	..	१५
स्त्रीलिङ्गशब्दरूपाणि		.	..	२०
नपुंसकलिङ्गशब्दरूपाणि		.	.	२४
सर्वनामशब्दरूपाणि		..	..	२७
संख्यावाचकाः शब्दाः		...	...	३३
धातुरूपाणि		..	...	३७
परस्मैपदिनो धातवः		...	..	३९
आत्मनेपदिनो धातवः		...	...	५०

प्रवेशकः

प्रथमः पाठः

वर्णमाला

अ, इ, उ, ऋ, लृ, इनको ह्रस्व स्वर कहते है।

आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ, इनको दीर्घ स्वर कहते है।

अ से औ तक अच् या स्वर कहलाते है।

क, ख, ग, घ, ङ = कवर्ग	क से म तक स्पर्श वर्ण कहलाते है।
च, छ, ज, झ, ञ = चवर्ग	
ट, ठ, ड, ढ, ण = टवर्ग	
त, थ, द, ध, न = तवर्ग	
प, फ, ब, भ, म = पवर्ग	

य र ल व = अन्तःस्थ

श ष स ह = ऊष्म

क से ह तक हल् या व्यञ्जन कहलाते है।

ं = अनुस्वार

ः = विसर्ग

वर्णोच्चारणस्थानानि

अ, आ, कवर्ग, ह, विसर्ग = कण्ठ

इ, ई, चवर्ग, य, श = तालु

ऋ, ॠ, टवर्ग, र, ष = मूर्धा

लृ, तवर्ग, ल, स = दन्त

उ, ऊ, पवर्ग = ओष्ठ

ङ, ञ, ण, न, म = नासिका और यथाक्रम से पूर्वकथित कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त और ओष्ठ

ए, ऐ = कण्ठ और तालु

ओ, औ = कण्ठ और ओष्ठ

व = दन्त और ओष्ठ

ं (अनुस्वार) = नासिका

द्वितीयः पाठः

संस्कृत मे शब्द के तीन वचन होते हैं—एकवचन, द्विवचन और बहुवचन। जब दो वस्तु हो तब द्विवचन का प्रयोग होता है, दो से अधिक मे बहुवचन लगता है। सज्ञा, विशेषण और सर्वनाम मे लिङ्ग भी तीन होते है, पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुसकलिङ्ग।

	पुंलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
एकवचन	एकः बालकः।	एका बालिका।	एक पुस्तकम्।
द्विवचन	द्वौ बालकौ।	द्वे बालिके।	द्वे पुस्तके।
बहुवचन	त्रयः बालका.।	तिस्र' बालिकाः।	त्रीणि पुस्तकानि।

भागीरथीतीरम्। वाराणसीनगरम्। सुन्दरः अश्वः। कपिला गौः। महान् राजा। देशभक्तिः। विद्यालाभः। सुखप्राप्तिः। कन्दुकक्रीडा। प्रकृष्टा बुद्धिः। कृषिकर्म। व्योमयानम्। बाष्पीयरथः। द्रुता गतिः॥

तृतीयः पाठः

क्रिया मे भी तीन वचन होते हैं, और हिन्दी की तरह तीन ही पुरुष होते हैं, प्रथमपुरुष, मध्यमपुरुष और उत्तमपुरुष; अपने लिए उत्तमपुरुष, जिससे कुछ कहा जाता है उसके लिए मध्यम-पुरुष और तीसरे के लिए प्रथमपुरुष। 'आप' या 'तुम' के अर्थ मे संस्कृत मे 'भवत्' शब्द का भी प्रयोग होता है जिसके साथ क्रिया प्रथमपुरुष में आती है, मध्यमपुरुष मे नहीं। 'त्वम्' प्रभृति 'युष्मत्' शब्द के रूप के योग से मध्यमपुरुष ही होता है। क्रिया मे लिङ्ग का कोई भेद नही होता है।

पठ्=पढ़ना

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	सः पठति।	तौ पठतः।	ते पठन्ति।
मध्यमपुरुष	त्वं पठसि।	युवां पठथः।	यूयं पठथ।
उत्तमपुरुष	अहं पठामि।	आवां पठावः।	वयं पठामः।

नदी वहति। कोकिलः गायति। चन्द्रः उदेति। शोभा विद्यते। विद्यार्थी पठति। अहं गच्छामि। दरिद्रः भिक्षते। द्वौ बालकौ क्रीडतः। बहवः वीराः युध्यन्ति। वृद्धा माता भोजयति। दुःखी रोदिति। अपि कुशलं वर्तते? कथं त्वं न आगच्छसि? यूयं सुखिनः स्थ। भवान् उच्चैः भाषते।

चतुर्थः पाठः

संस्कृत शब्दो के छः कारक होते है। (१) कर्ता, (२) कर्म, (३) करण, (४) संप्रदान, (५) अपादान, (६) अधिकरण। कर्ता और कर्म प्रसिद्ध हैं। जिससे कुछ कार्य सिद्ध किया जाता है वह करण है, जैसे कुल्हाड़ी से लकडी काटी जाय तो कुल्हाडी करण है। जिसको कुछ दिया जाता है या जिसके लिए कुछ कार्य किया जाता है, वह संप्रदान है। जैसे, दाता भिक्षु को धन देता हो या राजा के लिए सिपाही लड़ते हो, तो भिक्षु या राजा सप्रदान है। जहाँ से कोई वस्तु चली आती है वह अपादान है; जैसे, वृक्ष से अगर फल नीचे गिरता हो, तो वृक्ष अपादान है। जिसमे कोई वस्तु रहती है उस आधार को अधिकरण कहते है; जैसे, जमीन मे घड़ा है तो जमीन अधिकरण होगा। कर्त्ता से लेकर अपादान तक पाँच कारको मे प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, तथा पञ्चमी, ये विभक्तियाँ होती है। और अधिकरण मे सप्तमी विभक्ति होती है। और सम्बन्ध सामान्य (जैसे 'वृक्ष का फल', 'फूल का रग',) मे षष्ठी विभक्ति होती है। विभक्ति माने शब्दरूप या धातुरूप बनाने के लिए शब्द या धातु मे जो प्रत्यय जोड़े जाते है, जैसे सप्रदान मे 'मुझको' इस हिन्दी पद मे 'को'। इन प्रथमा प्रभृति सात विभक्तियो की भिन्न भिन्न आकृतियाँ होती है। फिर, हर एक के एकवचन, द्विवचन और बहुवचन मे आकृतिभेद होता है। इस कारण कुल मिलाकर विभक्तियों के २१ रूप होते हैं। सम्बोधन मे रूप प्रथमा की तरह होता

है; केवल एकवचन मे कही कही कुछ अन्तर पड़ता है। संज्ञा, विशेषण और सर्वनाम मे ये ७ विभक्तियाँ होती हैं। सर्वनाम में सम्बोधन नहीं होता है।

गज = हाथी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गजः	गजौ	गजाः
द्वितीया	गजम्	गजौ	गजान्
तृतीया	गजेन	गजाभ्याम्	गजैः
चतुर्थी	गजाय	गजाभ्याम्	गजेभ्यः
पञ्चमी	गजात्	गजाभ्याम्	गजेभ्यः
षष्ठी	गजस्य	गजयोः	गजानाम्
सप्तमी	गजे	गजयोः	गजेषु
(सम्बोधन—	हे गज	हे गजौ	हे गजाः)

तद् = वह (सर्वनाम)

प्रथमा	सः	तौ	ते
द्वितीया	तम्	तौ	तान्
तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
चतुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पञ्चमी	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
षष्ठी	तस्य	तयोः	तेषाम्
सप्तमी	तस्मिन्	तयोः	तेषु

अस्मद् = मैं (सर्वनाम)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वितीया	माम्, मा	आवाम्, नौ	अस्मान्, नः
तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
चतुर्थी	मह्यम्, मे	आवाभ्याम्, नौ	अस्मभ्यम्, नः
पञ्चमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
षष्ठी	मम, मे	आवयोः, नौ	अस्माकम्, नः
सप्तमी	मयि	आवयोः	अस्मासु

युष्मद् = तुम (सर्वनाम)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वितीया	त्वाम्, त्वा	युवाम्, वाम्	युष्मान्, वः
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभि
चतुर्थी	तुभ्यम, ते	युवाभ्याम्, वाम्	युष्मभ्यम्, वः
पञ्चमी	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
षष्ठी	तव, ते	युवयो., वाम्	युष्माकम्, वः
सप्तमी	त्वयि	युवयो	युष्मासु

पञ्चमः पाठः

बालकाः पाठशालायां पठन्ति । गुरूणां सकाशात् ते विद्यां लभन्ते । अहं जानामि विद्या परमं सुखम् इति । विद्यावान् सर्वेषु देशेषु मानं लभते । यस्य विद्या अस्ति तस्य सर्वम् अस्ति । अतः एव विद्यायाः अर्जनं युष्माकं परमं कर्तव्यम् ।

अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुः । तत्र पक्षिणः नानादेशेभ्यः आगताः रात्रिसमये निवसन्ति । तेषां मध्ये एकः काकः अस्ति, यस्य नाम लघुपतनकः इति । काकानां शब्दः अतिकठोरः भवति । तस्मिन् कः अपि प्रीतिं न लभते । यदा अहं भोजनं करोमि, तदा मम माता काकान् तस्मात् स्थानात् अपसारयति । माता पुत्रस्य परमा देवता । पिता अपि तथा एव भवति । मातापितृ-निदेशे सर्वदा अवस्थातव्यम् । दरिद्राय धनं दातव्यम् । परस्य उपकारः अस्माकं धर्मः । परस्य अपकारः कदा अपि न कर्तव्यः । युष्मभ्यम् एतत् पुस्तकं लिखावः । अवहितेन मनसा एतत् पठनीयम् ।

बालकाः विद्यालये कश्चित् कालं क्रीडन्ति । दीर्घैः काष्ठखण्डैः कन्दुकं ताडयन्ति । ते द्वयोः पक्षयोः विभक्ताः

भवन्ति। क्रीडास्थानस्य द्वे अर्धे भवतः। एकः पक्षः एकस्मिन् अर्धे वर्तते, अपरः अन्यतरस्मिन्। प्रत्येकस्य अर्धस्य अन्ते लक्ष्यस्थानम् अस्ति। एकपक्षीयाः बालकाः इच्छन्ति कन्दुकम् अपरपक्षस्य लक्ष्यस्थानं नयामः इति। अपरपक्षीयाः अपि तथा एव इच्छन्ति। यः पक्षः अपरपक्षस्य लक्ष्यस्थानं प्रति कन्दुकस्य नयने समर्थः भवति सः एव जयति। क्रीडा उत्तमः व्यायामः। व्यायामः शरीरस्य स्वास्थ्याय भवति॥

षष्ठः पाठः

काल तीन प्रकार के होते है, भूत, वर्त्तमान और भविष्य। कोई क्रिया कौन काल (समय) मे हुई है या वह किस प्रकार की है यह क्रिया को आकृति से मालूम होता है। इन भिन्न आकृतियों को लकार कहते हैं। सस्कृत मे दस लकार हैं। उनमें से लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् और लृट् के रूप इस भाग मे दिये गये हैं।

लट् या वर्तमान—क्रिया वर्तमान काल की है, केवल यह अर्थ प्रकट करने के लिए इस लकार का प्रयोग होता है, जैसे, 'सः गच्छति' (वह जा रहा है), 'सः गृहे वर्तते' (वह घर मे है)।

लोट् या अनुज्ञा—यह लकार कोई क्रिया करने के लिए अनुज्ञा या आदेश प्रकाश करता है; जैसे, 'स गच्छतु' (मै आज्ञा देता हूँ कि वह जाय), 'स गृहे वर्तताम्' (मैं आज्ञा देता हूँ कि वह घर मे हो)।

लङ् या अनद्यतनभूत—यह आज न हुई हो, किन्तु पहले किसी दिन हुई हो, ऐसी घटना को प्रकट करता है, जैसे, 'ह्यः सः अगच्छत्' (वह कल गया था), 'ह्यः स गृहे अवर्तत' (कल वह घर मे था)। भूत या पूर्व काल को क्रिया समझाने के लिए और दो लकार होते हैं, लुङ् या सामान्यभूत (जा कि पूर्व की

किसी घटना के लिए आ सकता है, जैसे, 'रामः राजा अभूत्' रामजी राजा हुए।), और लिट् या परोक्षभूत। लिट् पूर्व काल की केवल उन घटनाओं के लिए आ सकता है, जो कहनेवाले की आँखों के सामने न हुई हों; जैसे, 'सः गृहं जगाम' (वह घर गया, पर मैंने उसे जाते नहीं देखा), 'सः मम जन्मनः प्राक् गृहे ववृते' (मेरे जन्म के पहले वह घर पर रहा)। लट् लकारवाली क्रिया में 'स्म' लगाने से भी अतीत का अर्थ होता है, जैसे, 'सः गच्छति स्म' (वह गया था)।

विधिलिङ्—कोई कार्य किया जाय इस इच्छा को प्रकाश करने के लिए इस लकार का प्रयोग होता है, जैसे, 'सः गृहं गच्छेत्' (मैं चाहता हूँ कि वह घर जाय, या उसे घर जाना चाहिए), 'स गृहे वर्तेत' (मैं चाहता हूँ कि वह घर पर हो, या उसे चाहिए कि वह घर पर हो)।

लृट् या सामान्य भविष्य—कोई क्रिया भविष्यत्काल में होगी, यह समझाने के लिए इस लकार का प्रयोग होता है, जैसे, 'सः गृहं गमिष्यति' (वह घर जायगा), 'तस्य पुत्रः जनिष्यते' (उसका पुत्र होगा)।

आगे की पाठावली में लट, लोट्, लङ्, विधिलिङ् और लृट् लकार ही की क्रियायें मिलेंगी, दूसरे लकार की नहीं। परन्तु लिट् के भी कुछ रूप हैं।

इन लकारों में प्रत्यय कैसे लगते हैं, सो व्याकरण-भाग में मिलेंगे। धातु दो प्रकार के होते हैं, परस्मैपदी और आत्मने-

पदी। परस्मैपदी धातुओं के लिए लकारों के रूप एक तरह के हैं और आत्मनेपदी धातुओं के लिए कुछ और तरह के हैं। कोई धातु (जैसे गम् = जाना, पठ = पढ़ना) परस्मैपदी होते हैं, कोई आत्मनेपदी (जैसे वृत् = होना, जन् = पैदा होना) और कोई उभयपदी अर्थात् दोनों रूप के (जैसे ब्रू = बोलना)। इनकी आकृतियाँ व्याकरण-भाग में मिलेंगी।

कोई क्रिया होने के बाद दूसरी क्रिया हुई है, या हो रही है, या होगी, यह अर्थ जब प्रकाश करना होगा, तब प्रथम क्रिया के धातु में लकार का प्रत्यय न लगाकर 'त्वाच् (त्वा)' प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे, 'सः गृह गत्वा भक्षयति' (वह घर जाकर खाता है)।

धातु के पहले किसी समय प्र, परा, आ, आदि शब्द जोड़ दिये जाते हैं जिससे प्रायः धातु के अर्थ में कुछ परिवर्तन हो जाता है; जैसे 'गम्' के माने 'जाना' और 'आ-गम्' के माने 'आना', 'उप-गम्' के माने 'किसी के सामने हाज़िर होना'।

जब किसी धातु के पहले उपसर्ग हो, तब पूर्व-कथित अर्थ में 'त्वाच्' प्रत्यय न लगकर 'ल्यप् (य)' प्रत्यय लगता है; जैसे, 'सः गृहम् आगम्य ('आगत्वा' नहीं) भक्षयति' (वह घर आकर खाता है)।

धातु दो प्रकार के होते हैं, सकर्मक (जैसे, गम् = जाना, ग्रह = लेना) और अकर्मक (जैसे, अस् = होना, शी = लेटना)।

हिन्दी की तरह सस्कृत मे भी सकर्मक धातु कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य मे होते हैं। कर्तृवाच्य, यथा—'सः शत्रु हन्ति' (वह शत्रु को मारता है), 'सः शत्रु हतवान्' (उसने शत्र् को मारा)। कर्मवाच्य, यथा—'तेन शत्रुः हन्यते' (उससे शत्रु मारा जाता है), 'तेन शत्रुः हत·' (उससे शत्रु मारा गया)। इनके अतिरिक्त एक भाववाच्य भी है, जिससे कर्तृवाच्य की तरह कर्ता का प्राधान्य नही है, और न कर्मवाच्य की तरह कर्म का, किन्तु केवल क्रिया का अर्थ प्रधान होता है, जैसे, 'तेन स्थीयते' (उनसे रहना हो रहा है)। भाववाच्य तभी होता है जब धातु अकर्मक है या सकर्मक होने पर भी वक्ता कर्म को विवक्षा नहीं करता है, इन स्थाना मे कर्तृवाच्य भी होता है।

पाठावली

(१) प्रथमः पाठः

पथिक-व्याघ्र-कथा

एकः वृद्धः व्याघ्रः स्नातः कुशहस्तः सरस्तीरे ब्रूते, "भोः भोः पान्थाः, इदं सुवर्णकङ्कणं गृह्यताम् ।" ततः लोभाकृष्टेन केनचित् पान्थेन आलोचितम्, "भाग्येन एतत् अपि संभवति । किंतु अस्मिन् अर्थसन्देहे प्रवृत्तिः न विधिः । तत् निरूपयामि तावत् ।" प्रकाश ब्रूते, "क तत् कङ्कणम् ?" व्याघ्रः हस्तं प्रसार्य दर्शयति । पान्थः अवदत्, "कथं त्वयि विश्वासः ?" व्याघ्रः उवाच, "इदानीम् अपि अहं स्नानशीलः दाता वृद्धः गलितनखदन्तः कथं न विश्वासभूमिः ? मम च एतावान् लोभविरहः येन स्वहस्तगतम् अपि स्वर्णकङ्कणं यस्मै कस्मैचित् दातुम् इच्छामि । किंतु व्याघ्रः हि मानुषं खादति इति लोकापवादः दुर्निवारः । तत् अत्र सरसि स्नात्वा सुवर्णकङ्कणं गृहाण ।" इति वचनेन सञ्जातविश्वासः यावत् असौ सरः स्नातुं प्रविशति, तावत् महापङ्के निमग्नः पलायितुम् अक्षमः । तं दृष्ट्वा व्याघ्रः वदति, "हा हा पान्थ, महापङ्के निमग्नः असि । त्वाम् अहम् उत्थापयामि ।"

इति अभिधाय शनैः शनैः आगम्य व्याघ्रः तं हस्ते धृतवान् मारयित्वा खादितवान् च ॥

प्रश्नाः

(१) एषु पदेषु सन्धिः क्रियताम्:—

वृद्ध + व्याघ्रः, पान्थेन + आलोचितम्, भाग्येन + एतत्, प्रवृत्तिः + न, तत् + निरूपयामि, पान्थः + अवदत्, तत् + अत्र, शनैः + आगम्य ।

(२) अत्र सन्धिविच्छेदः क्रियताम्:—

सरस्तीरे, लोभाकृष्टेन, दुर्निवारः।

(३) पान्थः कथं प्रथमं व्याघ्रात् बिभेति स्म ?

(४) कथं वा तस्य भयापनयन जातम् ?

(५) अपि स व्याघ्रः वस्तुतः विश्वसनीयः आसीत् ?

---

(२) द्वितीयः पाठः

गर्दभ-शृगाल-कथा

अस्ति कस्मिंश्चिद् अधिष्ठाने मदोद्धतः नाम गर्दभः । स दिवा रजकगृहे भारोद्वहनं कृत्वा रात्रौ स्वेच्छया चरति । अथ एकदा तस्य रात्रौ क्षेत्रेषु चरतः केनचित् शृगालेन सार्धं मैत्री अभवत् । तौ च वृतिभङ्गं कृत्वा कर्कटिकाक्षेत्रेषु प्रविश्य तत्फलभक्षणं स्वेच्छया कृत्वा प्रत्यूषे स्वस्थानं व्रजतः ।



क्षेत्ररक्षकेण ताड्यमानो गर्दभ.

अथ कदाचित् क्षेत्रमध्यस्थितेन गर्दभेन शृगालः अभिहितः, "भोः भगिनीसुत, पश्य अतिनिर्मला रजनी। तत् अहं गीतं करोमि। कथय कतमेन रागेण गायामि।" स प्राह, "माम, किम् अनेन अनर्थप्रचालनेन। चौरकर्मप्रवृत्तौ आवाम्। चौरैः निभृतैः एव स्थातव्यम्। किं च त्वदीयं गीतं शङ्खनादानुवादि, न मधुरम्। दूरात् अपि श्रुत्वा उत्थाय क्षेत्ररक्षका बन्धं वधं च विधास्यन्ति। तत् भक्षय तावत् अमृतरसाः कर्कटिकाः। मा त्वम् अत्र गीतव्यापारपरः भव।" तत् श्रुत्वा गर्दभः आह, "भोः, वनाश्रयत्वात् त्वं गीतरसं न वेत्सि, तेन एतत् ब्रवीषि।" शृगालः आह, "अस्ति एतत्। परं कठोरम् उन्नदसि। तत् किम् अनेन नादेन स्वार्थहानिकारिणा?" रासभः आह, "धिक्, मूर्ख, किम् अहं गीतं न जानामि? कथम्, भगिनीसुत, माम् अनभिज्ञं वदसि, निवारयसि च?" शृगालः आह, "माम, यदि एवम्, तत् अहं वृतिद्वारदेशस्थः क्षेत्ररक्षकम् अवलोकयामि। त्वं पुनः स्वेच्छया गीतं कुरु।"

तथा अनुष्ठिते गर्दभः शब्दायितुम् आरभत। ततः क्षेत्ररक्षकः गर्दभशब्दं श्रुत्वा क्रोधात् दन्तान् दन्तैः निपीडयन् लगुडम् उद्यम्य प्रधावितः। अथ गर्दभः लगुडप्रहारैः तथा प्रताडितः यथा भूपृष्ठे पतितः मृतश्च ॥

भवद्भिः यत् मत्स्यजीविभिः अभिहितम् ? तत् रात्रावेव गम्यताम् अन्यत् सरः । नूनं प्रभातसमये ते मत्स्यजीविनः अत्र समागम्य मत्स्यनाशं करिष्यन्ति, एतत् मम मनसि वर्तते । तत् न युक्तं साम्प्रतं क्षणम् अपि अत्र अवस्थातुम् ।" एतत् श्रुत्वा प्रत्युत्पन्नमतिः प्राह, "भोः सत्यम् अभिहितं भवता । ममापि अभीष्टम् एतत् । तत् अन्यत्र गम्यताम् ।" अथ तत् श्रुत्वा उच्चैः विहस्य यद्भविष्यः प्राह, "हंहो न सम्यक् मन्त्रित भवद्भ्याम् । किं तेषां वाङ्मात्रेण पितृपैतामहिकम् एतत् सरः त्यक्तुं युज्यते ? यदि आयुःक्षयः अस्ति तदा अन्यत्र गतानामपि मृत्युः भविष्यति । तत् अहं न यास्यामि । भवद्भ्यां तु यत् रोचते तत् क्रियताम् ।"

एवं तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा अनागतविधाता प्रत्युत्पन्नमतिश्च निष्क्रान्तौ सह परिजनेन । अथ प्रभाते तैः मत्स्यजीविभिः जालैः तं जलाशयमालोड्य यद्भविष्येण सह तत् सरः निर्मत्स्यं कृतम् ॥

प्रश्नाः

(१) सन्धीयन्ताम्—

एतत् + मम, एतत् + श्रुत्वा, ममापि + अभीष्टम्, सम्यक् + मन्त्रितम्, सरः + त्यक्तु, आयु क्षय + अस्ति, मृत्यु + भविष्यति ।

(२) सन्धयो विच्छिद्यन्ताम्—

जलाशये, अभीष्टम्, वाङ्मात्रेण, निर्मत्स्यम् ।

(३) अत्र के लकाराः प्रयुक्ताः, केषु चार्थेषु, तन्निर्दिश्यताम्—
प्रतिवसन्ति स्म, अकथयत, करिष्यन्ति, गम्यताम्।

(४) कथं मत्स्येषु अनागतविधाता एव तत्सरस्त्यागस्य प्रस्तावम् अकरोत्?

---

(४) चतुर्थः पाठः

बक-कुलीर-कथा

अस्ति मालवविषये पद्मगर्भाभिधानं सरः। तत्र एको वृद्धबकः सामर्थ्यहीन उद्विग्नम् इव आत्मानं दर्शयित्वा स्थितः। स च केनचित् कुलीरेण दूरादेव पृष्टः, "किमिति भवान् अत्र आहारपरित्यागेन तिष्ठति?" बकेन उक्तम्, "भद्र, शृणु। मत्स्या मम जीवनहेतवः। मत्स्याश्च अवश्यम् अत्र कैवर्तैः व्यापादयितव्याः इति नगरोपान्ते पर्यालोचना मया श्रुता। तदतः वर्तनाभावात् अस्मन्मरणम् उपस्थितम् इति ज्ञात्वा आहारस्यापि अहं निरादरः।" ततः सर्वैः मत्स्यैः आलोचितम्, "इह समये तावत् उपकारक एव अयम् इति लक्ष्यते। तत् अयमेव यथाकर्तव्यं पृच्छ्यताम्।" मत्स्या ऊचुः, "कोऽत्र रक्षणोपायः?" बको ब्रूते, "अस्ति रक्षाहेतुः जलान्तराश्रयणम्। तत्र अहं युष्मान् नयामि।" मत्स्यैः भयात् उक्तम्, "एवम् अस्तु"। ततः असौ दुष्टबकः तान् मत्स्यान् एकैकशः

नीत्वा अभक्षयत्। अनन्तरं कुलीरः तम् उवाच, "भो बक, माम् अपि तत्र नय।" ततो बकोऽपि अपूर्वकुलीर-मांसार्थी सादरं तं नीतवान्। अथ बकेन स्थले नीत्वा मृतः कुलीरः मत्स्यकङ्कालाकीर्णं भूतलम् अवलोक्य अचिन्तयत्, "हा, हतोऽस्मि मन्दभाग्यः। भवतु। इदानीं समयोचितं व्यवहरामि।" इत्यालोच्य स कुलीरः तस्य बकस्य ग्रीवां दशनसन्दंशेन चिच्छेद ॥

प्रश्ना.

(१) सन्धिविच्छेदं कुरु—

पद्मगर्भाभिधानम्, अस्मन्मरणम्, ०मांसार्थी, ०सन्दंशेन।

(२) लकारनिर्देशं कुरु—

लक्ष्यते, पृच्छ्यताम्, अभक्षयत्, चिच्छेद।

(३) अपि स बक वस्तुत मत्स्यान् प्रति कृपावान् आसीत ?

(४) कथ मत्स्याना तस्मिन् विश्वासः न उचित. आसीत् ?

(५) अपि अयं कुलीर अनागतविधाता आसीत्, उत प्रत्युत्पन्नमतिः अथवा यद्भविष्य. ?

---

(५) पञ्चमः पाठः

व्याघ्रचर्मावृतगर्दभ-कथा

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने शुद्धपटो नाम रजकः प्रतिवसति स्म। तस्यैको रासभोऽस्ति। सोऽपि घासाभावात् अतिदुर्बलः। अथ तेन रजकेन क्वापि व्याघ्रचर्म प्राप्तम्। ततश्च अचिन्तयत्, "अहो, शोभनम् आपतितम्। एतत् चर्म परिधाप्य रासभं रात्रौ यावत् क्षेत्रेषु उत्सृजामि, येन व्याघ्रं मत्वा समीपवर्तिनः क्षेत्रात् न निष्कासयन्ति।" तथानुष्ठिते रासभो रात्रौ यथेच्छया यवभक्षणं करोति। रात्रिशेषेऽपि भूयो रजकः स्वाश्रयं नयति। एवं गच्छता कालेन स रासभः पीवरतनुर्जातः। कृच्छ्रात् बन्धनम् अपि नीयते। अथ अन्यस्मिन्नहनि स दूरात् रासभशब्दं शृण्वन् तारस्वरेण शब्दायितुम् आरब्धः। अथ ते क्षेत्रपा रासभोऽयं व्याघ्रचर्मप्रतिच्छन्न इति मत्वा लगुडप्रहारैः तं व्यापादितवन्तः।

सुगुप्तं रक्ष्यमाणोऽपि दर्शयन् दारुणं वपुः।
व्याघ्रचर्मप्रतिच्छन्नो वाक्कृते रासभो हतः॥

प्रश्नाः—

(१) सन्धीयन्ताम्—एतत् + चर्म, क्षेत्रेषु + उत्सृजामि, कृच्छ्रात् + बन्धनम्, शृण्वन् + तारस्वरेण।

(२) रासभस्य घासाभावे को हेतुः स्यात् ?

(३) [illegible] कथं रजकः तं स्वगृहं नयति स्म ?

(६) षष्ठः पाठः

मुनि-मूषक-कथा

अस्ति गौतमस्य महर्षेस्तपोवने महातपा नाम मुनिः। तेनाश्रमसन्निधाने मूषकशावकः काकमुखात् भ्रष्टो दृष्टः। पश्चात् दयालुना तेन मुनिना नीवारकणैः स परिपालितः। तं च मूषकं खादितुं यत्नात् अन्विष्यन् बिडालो मुनिना दृष्टः। ततः तपःप्रभावात् स मूषको बिडालः कृतः। स बिडालः कुक्कुरात् बिभेति। ततोऽसौ कुक्कुरः कृतः। कुक्कुरस्य व्याघ्रात् महत् भयम्। तदनन्तरं व्याघ्रः कृतः। अथ व्याघ्रमपि तं स मुनिः मूषकनिर्विशेषेण पश्यति। तं च मुनिं दृष्ट्वा सर्वे वदन्ति, "अनेन मुनिना अयं मूषको व्याघ्रतां नीतः।" एतच्छ्रुत्वा दृष्ट्वा च स व्याघ्रः सव्यथोऽचिन्तयत्, "यावत् अनेन मुनिना जीवितव्यं तावत् इदं मम स्वरूपाख्यानम् अकीर्तिकरं न पलायिष्यते।" इत्यालोच्य मुनिं हन्तुं गतः। तत् ज्ञात्वा मुनिना पुनर्मूषकः कृतः।

नीचः श्लाघ्यपदं प्राप्य स्वामिनं हन्तुमिच्छति।
मूषको व्याघ्रतां प्राप्य मुनिं हन्तुं गतो यथा॥

प्रश्नाः—

(१) वाच्यपरिवर्तनं क्रियताम्—

तेन मुनिना नीवारकणैः स परिपालितः ।

(२) मुनौ मृते मूषकस्य कः लाभः स्यात् ?

(३) अपि अयं मूषकः कृतज्ञः आसीत् कृतघ्नः वा ?

---

(७) सप्तमः पाठः

राज-वानर-कथा

कस्यचित् राज्ञो नित्यं वानरः अतिभक्तिपरोऽङ्ग-सेवकः अभवत् । एकदा राज्ञो निद्रां गतस्य वानरे व्यजनं गृहीत्वा वायुं विदधति राज्ञो वक्षःस्थलोपरि मक्षिका उपविष्टा । व्यजनेन मुहुर्मुहुः निषिध्यमानापि पुनः पुनः तत्रैव उपविशति । ततस्तेन स्वभावचपलेन मूर्खेण वानरेण क्रुद्धेन सता तीव्रं खड्गम् आदाय तस्या उपरि प्रहारो विहितः । ततो मक्षिका उड्डीय गता परं तेन शितधारेण असिना राज्ञो वक्षो द्विधा जातं राजा मृतश्च ।

तस्मात् चिरायुः इच्छता जनेन मूर्खोऽनुचरो न रक्षणीयः ॥

प्रश्नाः—

(१) 'विद्यति' इति कीदृशं पदं, नाम, आख्यातं वा ?
(२) 'सता' इति पदस्य केन सम्बन्ध. ?
(३) सन्धीयन्ताम्—तस्मात् चिरायु. इच्छता ।
(४) कथं खड्गप्रहारे सति मक्षिका न मृता ?

---

(८) अष्टमः पाठः

जामातृ-चतुष्टय-कथा

अस्ति अत्र धरापीठे विकण्टक नाम नगरम् । तत्र महाधनः ईश्वरो नाम भाण्डपतिः । तस्य चत्वारो जामातरोऽवन्तीपीठात् प्राघूर्णका विकण्टकपुरे समायाताः ते च तेन महता गौरवेण अभ्यर्चिता भोजनाच्छादनादिभिः। एवं तेषां तत्र वसतां मासषट्कं सञ्जातम् । तत ईश्वरेण स्वभार्या उक्ता, "यदेते जामातरः परमगौरवेण सत्कृताः स्वानि गृहाणि न गच्छन्ति, तत् किं कथ्यते ? विनापमानं न यास्यन्ति । तदद्य भोजनवेलायां पादप्रक्षालनार्थं जलं न देयं येन अपमानं ज्ञात्वा परित्यज्य गच्छन्ति" इति । तथा अनुष्ठिते गर्गः पादप्रक्षालनापमानात्, सोमो लघ्वासनदानात्, दत्तः कदशनतो यातः । एवं ते त्रयोऽपि परित्यज्य याताः । चतुर्थः श्यामलको यावत् न याति तावत् अर्धचन्द्रप्रदानेन निष्कासितः ।

गर्गो हि पादशौचाल्लघ्वासनदानतो गतः सोमः ।
दत्तः कदशनभोज्याच्छ्यामलकश्चार्धचन्द्रेण ॥

प्रश्नाः

(१) सन्धिः क्रियताम्—अस्ति + अत्र, महाधनः + ईश्वरः, तावत् + अर्धचन्द्रप्रदानेन ।

(२) सन्धिविच्छेदः क्रियताम्—तत ईश्वरेण, विनापमानम्, लघ्वासनदानात्, कदशनभोज्याच्छ्यामलकः ।

(३) कथं ते चत्वारो जामातरः श्वशुरगृहे मासषट्कं यावत् न्यवसन् ?

(४) पादप्रक्षालनोदकम् अप्राप्यापि कथं सोम स्थितः ?

(५) श्यामलकेन के के अपमानाः लब्धाः ?

---

(९) नवमः पाठः

कुक्कुर-गर्दभ-कथा

अस्ति वाराणस्यां कर्पूरपटो नाम रजकः । स चैकदा रात्रौ निर्भरं प्रसुप्तः । तदनन्तरं द्रव्याणि हर्तुं चौरः तद्गृहं प्रविष्टः । तस्य प्राङ्गणे गर्दभो बद्धस्तिष्ठति कुक्कुरश्च उपविष्टः । अथ गर्दभः कुक्कुरमाह, "तवायं व्यापारः, तत् किमिति त्वम् उच्चैः शब्दं कृत्वा, स्वामिनं न जागरयसि ?" कुक्कुरो ब्रूते, "मम नियोगस्य चिन्ता त्वया न कर्तव्या । त्वमेव जानासि यथा अहम् एतस्य

गृहरक्षां करोमि। ततोऽयं चिरात् निर्भयः मम उपयोगं न जानाति। तेन अधुना मम आहारदानेऽपि मन्दादरः। अतो विना विपद्दर्शनेन स्वामिनः अनुजीविषु मन्दादरा भवन्ति।" गर्दभो ब्रूते, "शृणु रे बर्बर,

याचते कार्यकाले हि स किंभृत्यः स किंसुहृत्।"

कुक्कुरोऽपि आह, "शृणु तावत्

भृत्यान् संभावयेद्यस्तु कार्यकाले स किंप्रभुः॥"

गर्दभः सकोपम् आह, "पापीयांस्त्वम्, यः स्वामिकार्योपेक्षाम् एवं करोषि। भवतु, यथा स्वामी जागर्ति तत् मया कर्तव्यम्।" इत्युक्त्वा चीत्कारं कृतवान्। ततः स रजकः तेन चीत्कारशब्देन प्रबुद्धो निद्राभङ्गकोपात् उत्थाय गर्दभं लगुडेन ताडयामास॥

प्रश्नाः

(१) सन्धिं कुरु—

चौरः + तद्गृहम्, चिरात् + निर्भयः, स्वामिनः + अनुजीविषु।

(२) लकारनिर्देशं कुरु—

जागरयसि, ब्रूते, शृणु, ताडयामास।

(३) सन्धिविच्छेदः क्रियताम्—

बद्धस्तिष्ठति, आहारदानेऽपि, पापीयांस्त्वम्, स्वामिकार्योपेक्षाम्।

(४) "भृत्यान् संभावयेद्यस्तु कार्यकाले स किंप्रभुः" इत्यस्य स्पष्टार्थः क्रियताम्।

(५) चौरप्रवेशम् उपेक्षमाणः कुक्कुरः किमिच्छति स्म ?

---

(१०) दशमः पाठः

शृगाल-दुन्दुभि-कथा

कश्चित् शृगालः क्षुत्क्षामकण्ठ इतस्ततः परिभ्रमन् वने सैन्यद्वयसंग्रामभूमिम् अपश्यत्। तस्यां च दुन्दुभेः पतितस्य वायुवशात् वृक्षशाखाग्रैः हन्यमानस्य शब्दम् अशृणोत् । अथ क्षुभितहृदयश्चिन्तयामास, "अहो विनष्टोऽस्मि। तद् यावत् न अस्य प्रोच्चारितशब्दस्य दृष्टिगोचरे गच्छामि तावद् व्रजामि । अथवा, नैतद् युज्यते सहसैव पितृपैतामहं वनं त्यक्तुम्। उक्तं च,

भये वा यदि वा हर्षे संप्राप्ते यो विमर्शयेत्।
कृत्यं न कुरुते वेगान्न स सन्तापमाप्नुयात्॥

तत्तावत् जानामि कस्यायं शब्दः।"

धैर्यम् आलम्ब्य विमर्शयन् यावत् मन्दं मन्दं गच्छति तावत् दुन्दुभिम् अपश्यत्। स च तं परिज्ञाय समीपं गत्वा स्वयमेव कौतुकात् अताडयत्। भूयश्च हर्षात् अचिन्तयत्, "अहो चिरात् एतदस्माकं महत् भोजनम् आपतितम्। तत्, नूनं प्रभूतमांसमेदोसृग्भिः परिपूरितं भविष्यति। ततः परुषचर्मावगुण्ठितं दुन्दुभिं कथमपि विदार्य एकदेशे छिद्रं कृत्वा

संहृष्टमना मध्ये प्रविष्टः। परं तं दारुशेषम् अवलोक्य निराशीभूतः श्लोकम् इमम् अपठत्—

"पूर्वमेव मया ज्ञातं पूर्णमेतद्धि मेदसा ।
अनुप्रविश्य विज्ञातं यावच्चर्म च दारु च ॥"

प्रश्नाः

(१) सन्धिविच्छेदः क्रियताम्—
क्षुत्क्षामकण्ठः, इतस्ततः, क्षुभितहृदयश्चिन्तयामास, प्रोच्चारितशब्दस्य, वेगान्न, पूर्णमेतद्धि, यावच्चर्म ।

(२) उपरितनसन्दर्भे यानि क्त्वाजन्तानि ल्यबन्तानि वा पदानि सन्ति तानि निर्दिश ।

(३) एषु पदेषु लकाराः विस्पष्टं निर्दिश्यन्ताम्—
व्रजामि, आप्नुयात्, अताडयत्, भविष्यति ।

(४) वाच्यपरिवर्तनं कुरु—
पूर्वमेव मया ज्ञातम्

(५) विकटं दुन्दुभिशब्दं शृण्वन् शृगालः प्रथमं किममन्यत ?

---

(११) एकादशः पाठः

सिंह-मूषक-बिडाल-कथा

अस्ति अर्बुदशिखरनाम्नि पर्वते महाविक्रमो नाम सिंहः। तस्य पर्वतगुहायां शयानस्य केशराग्रं कश्चित् मूषकः छिनत्ति। स सिंहः केशराग्रं छिन्नं दृष्ट्वा कुपितः। तं विवरान्तर्गतं मूषकं अलभमानोऽचिन्तयत्, "किं विधेयम् अत्र ? भवतु, एवं श्रूयते—

क्षुद्रशत्रुर्भवेद्यस्तु विक्रमान्नैव लभ्यते।
तमाहर्तुं पुरस्कार्यः सदृशस्तस्य सैनिकः॥"

इत्यालोच्य तेन ग्रामं गत्वा दधिकर्णनामा बिडालः स्वगुहायां सारमांसाहारं दत्त्वा प्रयत्नात् आनीय धृतः। तद्भयात् मूषको बहिर्न निःसरति। तेन असौ सिंहः अक्षतकेशरः सुखं स्वपिति। मूषकशब्दं यदा यदा शृणोति तदा तदा सविशेषम् आहारं दत्त्वा बिडालं संवर्धयति। अथैकदा मूषकः क्षुधापीडितो बहिर्निःसरन् बिडालेन प्राप्तो व्यापादितश्च। अनन्तरं स सिंहो यदा कदाचिदपि तस्य मूषकस्य शब्दं विवरात् न शुश्राव तदा उपयोगाभावात् तस्य बिडालस्य आहारदानेऽपि मन्दादरो बभूव। ततः स च आहारदानविरहात् दुर्बलो दधिकर्णोऽवसन्नोऽभवत्।

निरपेक्षो न कर्तव्यः स्वामी भृत्यैः कदाचन ।
निरपेक्षं प्रभुं कृत्वा भृत्यः स्याद्दधिकर्णवत् ॥

प्रश्नाः

(१) सन्धीयन्ताम्—अस्ति + अर्बुदशिखरनाम्नि, कश्चित् + मूषकः + छिनत्ति, भवतु + एवम्, प्रयत्नात् + आनीय, विवरात् + न ।

(२) प्रकृतिनिर्देशपुरस्सरम् अत्रत्यानि क्त्वाजन्तानि ल्यबन्तानि च पदानि गणय ।

(३) अत्र प्रकृतिप्रत्ययौ निर्दिश—छिनत्ति, स्वपिति, शुश्राव ।

(४) प्रयतमानोऽपि शूरः स सिंहः कथ मूषकं नालभत ?

(५) स्वामिनं सदा सापेक्षं विधातु विडालेन किं करणीयमासीत् ?

---

(१२) द्वादशः पाठः

ब्राह्मण-नकुल-कृष्णसर्प-कथा

अस्ति उज्जयिन्यां माधवो नाम ब्राह्मणः। तस्य ब्राह्मणी प्रसूता। सा च ब्राह्मणी बालापत्यरक्षार्थं ब्राह्मणम् अवस्थाप्य स्नातुं गता। अथ ब्राह्मणस्य कृते राज्ञः सर्वश्राद्धं दातुम् आह्वानम् आगतम्। तत् दृष्ट्वा ब्राह्मणः सहजदारिद्र्यात् अचिन्तयत्, "यदि सत्वरं न गच्छामि तदा तत्र अन्यः कश्चित् श्राद्धं ग्रहीष्यति। उक्तं च,

आदेयस्य प्रदेयस्य कर्तव्यस्य च कर्मणः ।
क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः पिबति तद्रसम् ॥

दारकस्य चात्र रक्षको नास्ति । किं करोमि ? यातु । चिरकालप्रतिपालितम् इमं सुतनिर्विशेषं नकुलं बालकरक्षार्थं व्यवस्थाप्य गच्छामि ।" तथा कृत्वा गतः । ततः तेन नकुलेन बालकसमीपम् आगतः कृष्णसर्पो व्यापादितः खण्डितश्च । तथा असौ नकुलो ब्राह्मणम् आयान्तम् अवलोक्य रक्तविलिप्तमुखपादः सत्वरम् उपगम्य ब्राह्मणस्य चरणयोः लुलोठ । ततोऽसौ ब्राह्मणस्तथाविधं नकुलं दृष्ट्वा, "मम पुत्रः अनेन भक्षितः" इत्यवधार्य, तं व्यापादितवान् । अनन्तरं यावत् असौ उपसृत्य पश्यति ब्राह्मणः तावत् बालकः सुप्तः सर्पश्च व्यापादितः तिष्ठति ।

योऽर्थतत्त्वमविज्ञाय क्रोधस्यैव वशं गतः ।
स तथा तप्यते मूढो ब्राह्मणो नकुलादिव ॥

प्रश्नाः

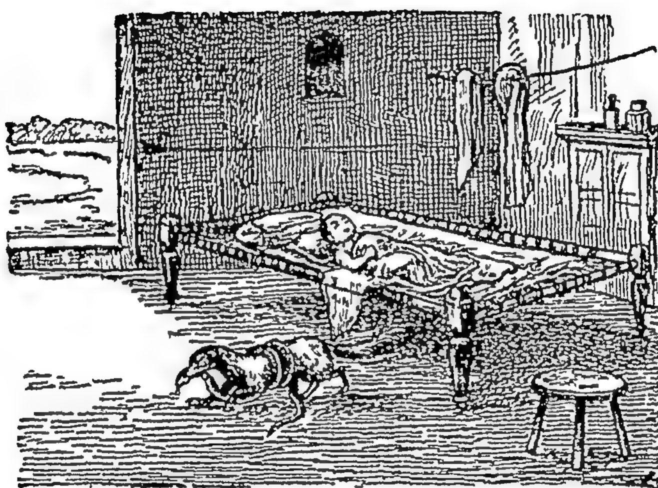
(१) सन्धिविच्छेदः क्रियताम्—बालापत्यरक्षार्थम्, निर्विशेषम्, इत्यवधार्य, क्रोधस्यैव ।

(२) वाच्यपरिवर्तनं क्रियताम्—तेन नकुलेन कृष्णसर्पो व्यापादितः ।

(३) कथं ब्राह्मण्याः प्रत्यावर्तनकालं स ब्राह्मणो नापेक्षते स्म ?

(४) आदेयस्येति श्लोकस्य व्याख्या सरलसंस्कृतेन क्रियताम् ।

(५) नकुलं व्यापाद्य कथं ब्राह्मणोऽज्ञानात् सर्प एव नकुलेन हतो न बालक इति ?



नकुलेन कृष्णसर्पो व्यापादितः

(१३) त्रयोदशः पाठः

घण्टा-वानर-कथा

अस्ति श्रीपर्वतमध्ये ब्रह्मपुराभिधानं नगरम्। तत्र घण्टाकर्णो नाम राक्षसः प्रतिवसतीति जनापवादः सदा श्रूयते। एकदा घण्टाम् आदाय पलायमानः कश्चित् चौरो व्याघ्रेण व्यापादितः खादितश्च। तत्पाणिपतिता घण्टा वानरैः प्राप्ता। ते च वानराः तां घण्टां सर्वदैव वादयन्ति। ततः तन्नगरजनैः स मनुष्यः खादितो दृष्टः। प्रतिक्षणं च घण्टावादः श्रूयते। अनन्तरं घण्टाकर्णः कुपितो मनुष्यान् खादति घण्टां च वादयति इत्युक्त्वा जनाः सर्वे नगरात् पलायिताः। ततः कयाचित् नार्या विमृश्य, मर्कटा घण्टां वादयन्ति इति स्वयं परिज्ञाय, राजा विज्ञापितः, "देव, यदि धनोपक्षयः क्रियते, तदा अहम् एनं घण्टाकर्णं मारयामि।" ततो राज्ञा धनं दत्तम्। रमण्या च नानाप्रकारपूजागौरवं दर्शयित्वा स्वयं वानरप्रियफलानि आदाय वनं प्रविश्य फलानि आकीर्णानि। ततो घण्टां परित्यज्य वानराः फलासक्ता बभूवुः। सा रमणी घण्टां गृहीत्वा समायाता सकललोकपूज्या अभवत्।

शब्दमात्रान्न भेतव्यमज्ञात्वा शब्दकारणम्।
शब्दहेतुं परिज्ञाय रमणी गौरवं गता॥

प्रश्नाः

(१) घण्टाकर्ण इति नाम्नः कोऽर्थः ?

(२) वाच्यपरिवर्तनं कुरु—यदि धनोपचयः क्रियते ।

(३) कथं सा रमणी पूजाडम्बरं कृतवती ?

---

(१४) चतुर्दशः पाठः

ब्राह्मण-कर्कट-कथा

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने ब्रह्मदत्तनामा ब्राह्मणः प्रतिवसति स्म । स च प्रयोजनवशात् ग्रामात् प्रस्थितः स्वमात्रा अभिहितः, "वत्स, कथम् एकाकी व्रजसि ? तद् अन्विष्यतां कश्चिद् द्वितीयः सहायः ।" स आह, "अम्ब, मा भैषीः । निरुपद्रवोऽयं मार्गः । कार्यवशात् एकाकी गमिष्यामि ।" अथ तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा समीपस्थवाप्याः कर्कटम् आदाय मात्राभिहितः, "वत्स, अवश्यं यदि गन्तव्यं तदेष कर्कटोऽपि सहायः । तदेनं गृहीत्वा गच्छ ।"

सोऽपि मातुर्वचनात् उभाभ्यां पाणिभ्यां तं संगृह्य कर्पूर-पुटिकामध्ये निधाय पात्रमध्ये संक्षिप्य शीघ्रं प्रस्थितः । अथ गच्छन् ग्रीष्मतापेन सन्तप्तः कञ्चित् मार्गस्थं वृक्षम् आसाद्य तस्याधः प्रसुप्तः । अत्रान्तरे वृक्षकोटरात् निर्गत्य सर्पः

तत्समीपम् आगतः। सोऽपि कर्पूरसुगन्धप्रियत्वाद् तं परित्यज्य वस्त्रं विदार्य अभ्यन्तरगतां कर्पूरपुटिकाम् अतिलौल्याद् अभक्षयत्। सोऽपि कर्कटः तत्रैव स्थितः सन् सर्पप्राणान् अपाहरत्। ब्राह्मणोऽपि यावत् प्रबुद्धः पश्यति तावत् समीपे कृष्णसर्पो निजपार्श्वे कर्पूरपुटिकोपरि स्थितस्तिष्ठति, तं दृष्ट्वा व्यचिन्तयत्, 'कर्कटेनायं हतः'। इति प्रसन्नो भूत्वा अब्रवीत्, "भोः सत्यम् अभिहितं मम मात्रा यत् पुरुषेण कोऽपि सहायः कार्यः, नैकाकिना गन्तव्यम्। ततो मया श्रद्धापरिपूरितचेतसा तद्वचनम् अनुष्ठितम्। तेनाहं कर्कटेन सर्पव्यापादनात् रक्षितः। अथवा साधु इदम् उच्यते—

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥"

एवमुक्त्वा असौ ब्राह्मणो यथाभिप्रेतं गतः॥

प्रश्नाः

(१) सन्धिविच्छेदं कुरु—

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने, कश्चिद्द्वितीय, निरुपद्रवोऽयम्, मात्राभिहितः, कञ्चित्, कर्पूरपुटिकोपरि, यथाभिप्रेतम्।

(२) वाच्यपरिवर्तनं कुरु—कर्कटमादाय मात्राभिहितः।

(३) यदि स ब्राह्मणो मातुर्वचनेन कर्कटम् आत्मना सह न अनेष्यत् तदा किम् अभविष्यत्?

———

(१५) पञ्चदशः पाठः

मूर्खोपदेश-फलम्

अस्ति नर्मदातीरे पर्वतोपत्यकायां विशालः शाल्मली-तरुः। तत्र तरौ निर्मिते नीडे पक्षिणः सुखं वर्षास्वपि निवसन्ति। अथ घनमेघैः आवृते नभस्तले धाराभिः महती वृष्टिर्बभूव। ततो वानरान् तरुतले तिष्ठतः शीतार्तान् कम्पमानान् अवलोक्य कृपया पक्षिभिः आख्यातम्, "भो भो वानराः,

अस्माभिर्निर्मिता नीडाश्चञ्चुमात्राहृतैस्तृणैः।
हस्तपादादिसंयुक्ता यूयं किमवसीदथ ॥"

तच्छ्रुत्वा क्रुद्धैर्वानरैः आलोचितम्, "निर्वातनीडगर्भाव-स्थानसुखिनः पक्षिणः अस्मान् उपहसन्ति। तद्भवतु तावत् वृष्टेरुपशमः।" अनन्तरं शान्ते जलवर्षे तैर्वानरै-र्वृक्षम् आरुह्य सर्वे नीडा भग्नाः। तेषां पक्षिणाम् अण्डानि च अधःपातितानि।

विद्वानेवोपदेष्टव्यो नाविद्वांस्तु कदाचन।
वानरानुपदिश्याज्ञान् स्थानभ्रंशं ययुः खगाः ॥
उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।
पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम् ॥



वानरगण नीटो गग

प्रश्नाः

(१) अत्र ये संधयः सन्ति ते सर्वे विश्लिष्यन्ताम्—
अस्माभिर्निर्मिता नीडाश्चञ्चुमात्राहृतैस्तृणैः ।

(२) पक्षिशब्दस्य रूपं सर्वासु विभक्तिषु दर्शय ।

(३) 'वर्षासु' इत्यत्र कथं बहुवचनम् ?

(४) वाच्यपरिवर्तनं कुरु—वानरैः सर्वे नीडा भग्नाः ।

(५) नीडभङ्गेच्छवो वानराः कथं वृष्ट्युपशमकालं प्रतीक्षितवन्तः ?

---

(१६) षोडशः पाठः

मूषकभक्षित-लौहतुला-कथा

अस्ति कस्मिंश्चिदधिष्ठाने जीर्णधनो नाम वणिक्पुत्रः । स च द्रव्यक्षयात् देशान्तरगमनमना आसीत् । तस्य च गृहे लोहभारघटिता पूर्वपुरुषोपार्जिता तुला आसीत् । तां च कस्यचित् वणिजो गृहे निक्षेपभूतां कृत्वा देशान्तरं प्रस्थितः । ततः सुचिरं कालं देशान्तरं भ्रान्त्वा पुनः तदेव स्वपुरम् आगत्य तं श्रेष्ठिनम् उवाच, "भोः श्रेष्ठिन् दीयतां मे सा निक्षेपतुला ।" स आह, "नास्ति सा त्वदीया तुला । मूषकैः भक्षिता ।" जीर्णधन आह, "भोः श्रेष्ठिन् नास्ति दोषस्ते यदि मूषकैः भक्षिता इति । ईदृगेव संसारः न किञ्चिदत्र शाश्वतम् अस्ति ॥

परम् अहं नद्यां स्नानार्थं गमिष्यामि। तत् त्वम् आत्मीयं शिशुम् एतं मया सह स्नानोपकरणहस्तं प्रेषय"। सोऽपि चौर्यभयात् शङ्कितः स्वपुत्रम् उवाच, "वत्स, पितृव्योऽयं तव नद्यां स्नानार्थं यास्यति।' तत् गम्यताम् 'अनेन सह स्नानोपकरणम् आदाय।"

अथ असौ वणिक्शिशुः स्नानोपकरणम् आदाय प्रहृष्टमनाः तेन अभ्यागतेन सह प्रस्थितः। तथा अनुष्ठिते जीर्णधनः स्नात्वा तं शिशुं नदीगुहायां प्रक्षिप्य तद्द्वारं बृहच्छिलया आच्छाद्य सत्वरं गृहम् आगतः। पृष्टश्च तेन वणिजा, "भो अभ्यागत, तत् कथ्यतां कुत्र मे शिशुः यस्त्वया सह नदीं गतः।" स आह, "नदीतटात् स श्येनेन हृतः।" श्रेष्ठी आह, "मिथ्यावादिन्, किं कश्चित् श्येनः बालं हर्तुं शक्नोति? तत् समर्पय मे सुतम् अन्यथा राजकुले निवेदयिष्यामि।" स आह, "भोः सत्यवादिन् यथा श्येनो बालं न नयति तथा मूषका अपि लोहभारघटितां तुलां न भक्षयन्ति। तदर्पय मे तुलां यदि बालकेन प्रयोजनम्।"

एवं विवदमानौ द्वावपि राजकुलं गतौ। तत्र श्रेष्ठी तारस्वरेण प्रोवाच, "भो अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम्! मम शिशुरनेन चौरेण अपहृतः।" अथ धर्माधिकारिणः तम् ऊचुः, "भोः समर्प्यतां श्रेष्ठिसुतः।" स आह, "किं

करोमि ? पश्यतो मे नदीतटात् श्येनेन अपहृतः शिशुः ।"
तच्छ्रुत्वा ते प्रोचुः, "भो न सत्यम् अभिहितं भवता । किं
श्येनः शिशुं हर्तुं समर्थो भवति ?" स आह, "भो भोः
श्रूयतां मद्वचः ।

तुलां लोहसहस्रस्य यत्र खादन्ति मूषकाः ।
राजंस्तत्र हरेच्छ्येनो बालकं नात्र संशयः ॥

ते प्रोचुः, "कथमेतत् ?" ततः श्रेष्ठी सभ्यानाम्
आदितः सर्वं वृत्तान्तं निवेदयामास । तत् तैः विहस्य
द्वावपि तौ परस्परं सम्बोध्य तुलाशिशुप्रदानेन सन्तोषितौ ॥

प्रश्नाः

(१) देशान्तरगमनमना इत्यत्र कस्य शब्दस्य कस्या विभक्तौ, किं रूपं तन्निर्दिश ।

(२) लोहतुलायाः परहस्ते निक्षेपस्य किं कारणम् ?

(३) प्रकृतिप्रत्ययनिर्देशेन निरूप्यन्ताम् एतानि पदानि—भ्रान्त्वा, आगत्य, प्रेषय, पश्यतः, प्रोचुः ।

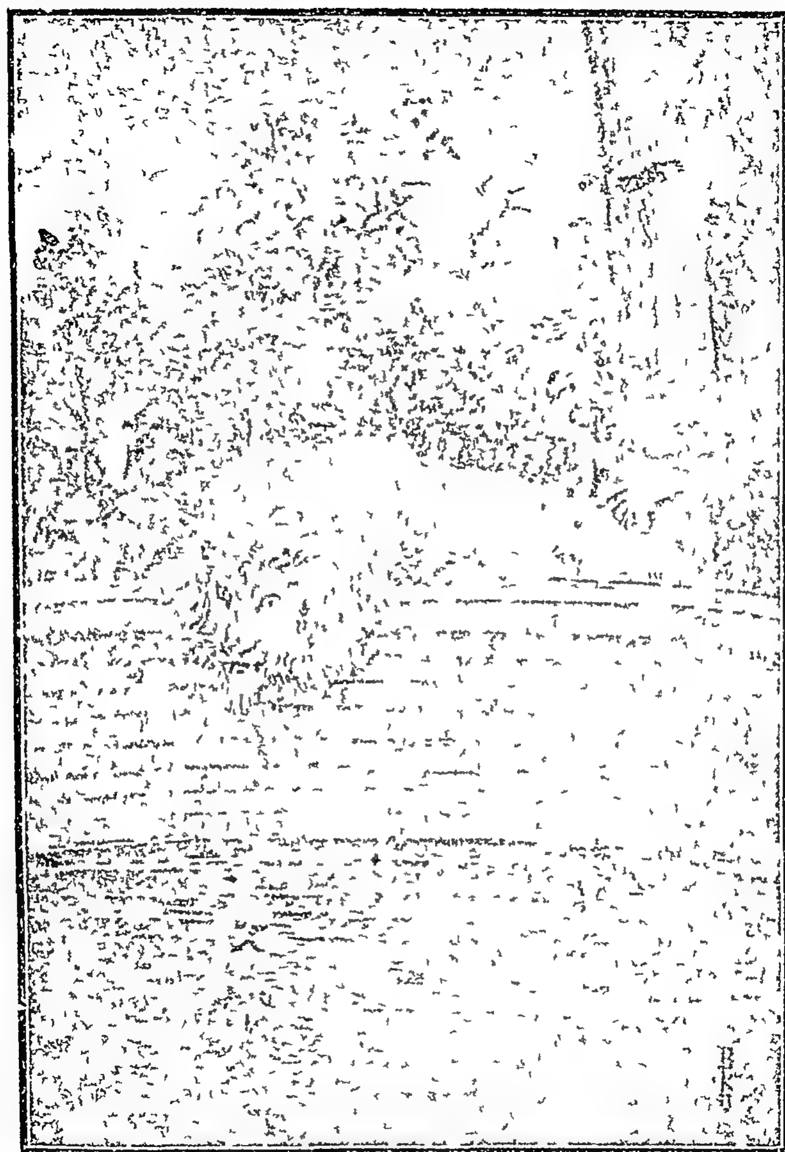
(४) "तुला लोहसहस्रस्य" इति श्लोको व्याख्यायताम् ।

(१७) सप्तदशः पाठः

सिंह-शश-कथा

कस्मिंश्चिद्वने भासुरको नाम सिंहः प्रतिवसति स्म। असौ नित्यमेव अनेकान् मृगशशकादीन् व्यापादयामास। अथैकदा तद्वनवासिनः सर्वे वराहमहिषशशकादयो मिलित्वा तम् अभ्युपेत्य प्रोचुः, "स्वामिन्, किम् अनेन सकलमृग-वधेन। तव एकेनैव मृगेण तृप्तिर्भवति। तत् क्रियताम् अस्माभिः सह समयः। अद्य प्रभृति प्रतिदिनम् एको मृगः तव भक्षणार्थं समेष्यति। एवं कृते तव तावत् प्राण-यात्रा क्लेशं विना भविष्यति, अस्माकमपि सर्वोच्छेदनं न स्यात्। तदेष राजधर्मोऽनुष्ठीयताम्।" अथ तेषां तद्वचनम् आकर्ण्य भासुरक आह, "अहो सत्यमभिहितं भवद्भिः। परं यदि नित्यमेव एको मृगो न आगमिष्यति तदा सर्वानेव भक्षयिष्यामि।" अथ ते "तथा" इति प्रतिज्ञाय निश्चिन्ताः तत्र वने निर्भयाः पर्यटन्ति। एकश्च प्रतिदिनं क्रमेण आयाति।

अथ कदाचित् शशकस्य वारः समायातः। प्रेषितश्च अनिच्छन्नपि स समस्तमृगैः। स च मन्दं मन्दं गत्वा वेलातिक्रमं विधाय व्याकुलहृदयः सिंहस्य वधोपायं चिन्तयन् दिनशेषे प्राप्तः। सिंहस्तु वेलातिक्रमेण



भासुरक स्वप्रतिबिम्ब सिंहान्तर मन्यते

क्षुधार्तः कोपाविष्टः अचिन्तयत्, "अहो मया प्रातरेव वनं निःसत्त्वं कर्तव्यम् ।" एवं चिन्तयति तस्मिन् शशको मन्दं मन्दं गत्वा प्रणम्य तस्याग्रे स्थितः । अथ तं चिरात् आयातं लघुकलेवरञ्च अवलोक्य कोपज्वलितः तं निर्भर्त्सयन् आह, "रे शशकाधम, एकतस्तावत् लघुस्त्वम्, अपरतश्च वेलातिक्रमेण आगतः । अस्मादपराधात् त्वां निपात्य प्रातः सकलान्यपि सत्त्वानि उच्छेत्स्यामि ।" अथ शशकः प्रणम्य सविनयं प्रोवाच, "स्वामिन्, नात्र अपराधो मम, न च अपरेषां सत्त्वानाम् । श्रूयतां कारणम् ।" सिंह आह, "सत्वरं निवेदय, यावत् मम दंष्ट्रान्तर्गतो न भवसि ।"

शशक आह, "स्वामिन्, समस्तमृगैः अद्य मम वारं विज्ञाय अहं प्रेषितः । मां तु लघुतरं दृष्ट्वा ते अपरान् पञ्च शशकान् मया सह प्रेषितवन्तः । ततश्च अहं आगच्छन् पथि महता केनचित् अपरसिंहेन विवरात् निर्गत्य अभिहितः, 'रे, क्व प्रस्थिता यूयम् ?' मया अभिहितम्, 'वयं वनस्वामिनो भासुरकसिंहस्य आहारार्थं समयधर्मेण तत्सकाशे गच्छामः ।' ततस्तेन अभिहितम् 'मदीयम् एतद्वनम् । मया सह समयधर्मेण समस्तैः मृगैः वर्तितव्यम् । चौरः स भासुरकः । अथ सोऽत्र वने राजा तर्हि पञ्च शशकान् अत्र धृत्वा तमाहूय द्रुतम् आगच्छ ।

यः कश्चित् आवयोः पराक्रमेण राजा भविष्यति स सर्वानेव मृगान् भक्षयिष्यति ।' ततोऽहं तेनादिष्टः स्वामिसकाशम् आगतः। एतत् वेलातिक्रमकारणम्। तदत्र स्वामी प्रमाणम् ।"

तच्छ्रुत्वा भासुरक आह, "भद्र, यद्येवं सत्वरं दर्शय मे तं चौरसिंहम्। येनाहं मृगकोपं तस्योपरि पातयित्वा स्वस्थो भवामि ।" शशक आह, "आगच्छतु स्वामी ।" एवम् उक्त्वा असौ अग्रे प्रस्थितः। ततश्च कञ्चित् कूपमासाद्य स भासुरकम् आह, "स्वामिन्, कस्ते प्रतापं सोढुं समर्थः ? त्वां दृष्ट्वा दूरत एव स चौरः स्वदुर्गं प्रविष्टः। आगच्छ, दर्शयामि ।" तच्छ्रुत्वा भासुरक आह, "भद्र सत्वरं दर्शय मे दुर्गम् ।" तदनु दर्शितः तेन कूपः। सोऽपि मूर्खः सिंहः कूपमध्ये आत्मनः प्रतिबिम्बं दृष्ट्वा अपरं सिंहं मत्वा नादं मुमोच। ततः तत्प्रतिशब्देन द्विगुणतरो नादः कूपात् समुत्थितः। अथ असौ तं नादम् आकर्ण्य कोपज्वलित आत्मानं कूपे क्षिप्त्वा प्राणान् मुमोच। तदा प्रभृति सर्वे मृगा निर्भयाः तत्र वने वसन्ति स्म।

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।
वने सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः ॥

प्रश्नाः

(१) सन्धीयन्ताम् एतानि पदानि—

मृगः + तव, तव् + एषः, तथा + इति, कदाचित् + शशकस्य, कोपाविष्टः + अचिन्तयत्, विवरात् + निर्गत्य, समस्तैः + मृगैः, असौ + अग्रे, दर्शितः + तेन ।

(२) सन्धिविश्लेषः क्रियताम्—

अभ्युपेत्य, सर्वोच्छेदनम्, अनिच्छन्नपि, दंष्ट्रान्तर्गतः, तच्छ्रुत्वा, मदोन्मत्तः ।

(३) वाच्यपरिवर्तनं क्रियताम्—

मया वनं निःसत्त्वं कर्तव्यम्, अहम् अपरसिंहेन अभिहित., स स्वदुर्गं प्रविष्टः ।

(४) 'एवं चिन्तयति तस्मिन्' इत्यत्र मध्यमपदं नाम आख्यातं वा ?

(५) अत्र लकारनिर्देशं कुरु—व्यापादयामास, प्रोचुः, समेष्यति, आह, आगच्छ, मुमोच ।

(६) भासुरकसमीपं प्रस्थित· शशकः तस्य कं वधोपायं चिन्तितवान् ?

(७) अपि सत्यं कोऽपि द्वितीयसिंहो भासुरकभयात् कूपं प्रविष्ट आसीत् ?

व्याकरणम्

व्याकरणम्

सन्धिः

दो वर्णों के परस्पर मिलाप का नाम सन्धि है। संयोग और सन्धि में इतना भेद है कि जहाँ वर्ण अपने स्वरूप से बिना किसी विकार के मिलते हैं उसे संयोग, और जहाँ विकृत होकर अर्थात् उनके स्थान में कोई और आदेश होकर मिलते हैं उसे सन्धि कहते हैं।

जैसे 'शक्र' में 'क्' और 'र्' बिना किसी विकार या परिवर्त्तन के अन्त्य 'अ' से मिले हैं, यह संयोग है और जैसे 'दध्यानय' में 'दधि' की 'इ', 'य' के रूप में परिवर्त्तित होकर 'आनय' के 'आ' से मिली है, यह सन्धि है।

सन्धि तीन प्रकार की है १ अच् या स्वरसन्धि, २ हल् या व्यञ्जनसन्धि, ३ विसर्गसन्धि।

अच्सन्धिः

अच् (स्वर) के साथ जब अच् (स्वर) का मेल होता है तो उसे अच् या स्वर-सन्धि कहते है।

अच्सन्धि सात प्रकार की होती है (१) सवर्णदीर्घ, (२) गुण, (३) वृद्धि, (४) अयादिचतुष्टय, (५) यण्, (६) पूर्वरूप, (७) पररूप।

(१) सवर्णदीर्घ

यदि ह्रस्व वा दीर्घ 'अ', 'इ', 'उ', 'ऋ', से उसका सवर्ण अक्षर आगे रहे तो दोनों मिलकर एक दीर्घ आदेश हो जाता है और इसको सवर्णदीर्घसन्धि कहते है। जैसे—

शश + अङ्कः	= (अ + अ = आ)	= शशाङ्कः
महा + आशयः	= (आ + आ = आ)	= महाशयः
गिरि + इन्द्रः	= (इ + इ = ई)	= गिरीन्द्रः
कवि + ईशः	= (इ + ई = ई)	= कवीशः
विधु + उदयः	= (उ + उ = ऊ)	= विधूदयः
वधू + उत्सवः	= (ऊ + उ = ऊ)	= वधूत्सवः
पितृ + ऋणम्	= (ऋ + ऋ = ॠ)	= पितॄणम्

(२) गुण

ह्रस्व अथवा दीर्घ अकार से आगे ह्रस्व या दीर्घ 'इ', 'उ', 'ऋ', 'लृ' रहें तो 'अ' (या 'आ') + 'इ' मिलकर 'ए', 'अ' (या 'आ') + 'उ' मिल-

कर 'ओ', 'अ', (या 'आ') + 'ऋ' मिलकर 'अर्' और 'अ' (या 'आ') + 'लृ' मिलकर 'अल्' आदेश होता है और इसी को गुणसन्धि कहते हैं। जैसे—

उप + इन्द्रः = (अ + इ = ए) = उपेन्द्रः
रमा + इच्छा = (आ + इ = ए) = रमेच्छा
नील + उत्पलम् = (अ + उ = ओ) = नीलोत्पलम्
गङ्गा + उदकम् = (आ + उ = ओ) = गङ्गोदकम्
देव + ऋषिः = (अ + ऋ = अर्) = देवर्षिः
ब्रह्मा + ऋषिः = (आ + ऋ = अर्) = ब्रह्मर्षिः
तव + लृकारः = (अ + लृ = अल्) = तवल्कारः

(३) वृद्धि

ह्रस्व अथवा दीर्घ आकार से आगे 'ए', 'ओ', 'ऐ', 'औ' रहे तो 'अ' (या 'आ') + 'ए' वा 'अ' (या 'आ') + 'ऐ' मिलकर "ऐ" और 'अ' (या 'आ') + 'ओ' वा 'अ' (या 'आ') + औ मिलकर "औ" आदेश होता है और इसको वृद्धिसन्धि कहते हैं। जैसे—

एक + एकम् = (अ + ए = ऐ) = एकैकम्
मत + ऐक्यम् = (अ + ऐ = ऐ) = मतैक्यम्
जल + ओघः = (अ + ओ = औ) = जलौघः
महा + ओषधिः = (आ + ओ = औ) = महौषधिः
सदा + औत्सुक्यम् = (आ + औ = औ) = सदौत्सुक्यम्

(४) अयादिचतुष्टय

'ए', 'ओ', 'ऐ', 'औ', इनके आगे यदि कोई स्वर हो तो इनको क्रम से 'अय्', 'अव्', 'आय्', 'आव्' ये आदेश हो जाते हैं। जैसे—

शे + अनम् = (ए + अ = अय) = शयनम्
ते + इह = (ए + इ = अयि) = तयिह
भो + अनम् = (ओ + अ = अव) = भवनम्
गो + ए = (ओ + ए = अवे) = गवे

विनै + अकः = (ऐ + अ = आय) = विनायकः
रै + ओः = (ऐ + ओः = आयोः) = रायोः
पौ + अकः = (औ + अ = आव) = पावकः
भौ + उकः = (औ + उ = आवु) = भावुकः

(५) यण्

ह्रस्व या दीर्घ 'इ', 'उ', 'ऋ', या 'ऌ', के आगे यदि कोई भिन्न स्वर रहे तो 'इ' (या 'ई'), 'उ' (या 'ऊ'), 'ऋ' (या 'ॠ'), 'ऌ' को क्रम से 'य्' 'व्' 'र्' 'ल्' आदेश हो जाते हैं, और उसके साथ आगे का स्वर मिल जाता है। इसी को यण्सन्धि कहते हैं। जैसे—

यदि + अपि = (इ + अ = य) = यद्यपि
अभि + उदयः = (इ + उ = यु) = अभ्युदयः
मुनि + ऋषभः = (इ + ऋ = यृ) = मुन्यृषभः
देवी + आगमनम् = (ई + आ = या) = देव्यागमनम्
सु + आगतम् = (उ + आ = वा) = स्वागतम्
साधु + ईहितम् = (उ + ई = वी) = साध्वीहितम्
मधु + ऋते = (उ + ऋ = वृ) = मध्वृते
पचतु + ओदनम् = (उ + ओ = वो) = पचत्वोदनम्
वधू + अवेक्षणम् = (ऊ + अ = व) = वध्ववेक्षणम्
पितृ + अनुमतिः = (ऋ + अ = र) = पित्रनुमतिः
मातृ + उपदेशः = (ऋ + उ = रु) = मात्रुपदेशः
पितृ + ऐश्वर्यम् = (ऋ + ऐ = रै) = पित्रैश्वर्यम्
पितृ + औदार्यम् = (ऋ + औ = रौ) = पित्रौदार्यम्
ऌ + आकृतिः = (ऌ + आ = ला) = लाकृतिः

(६) पूर्वरूप

यदि पदान्त के 'ए', 'ओ' से परे ह्रस्व अकार रहे तो वह अकार 'ए' और 'ओ' में ही मिल जाता है। उस पूर्वरूप में परिणत हुए अकार को (ऽ) इस चिह्न से बोधित करते हैं। जैसे—

मुने + अत्र = (ए + अ = एऽ) = मुनेऽत्र

गुरो + अव + (ओ + अ = ओऽ) = गुरोऽव

[इनके अतिरिक्त एक सातवाँ प्रकार भी है जिसका नाम है पररूप-सन्धि। उसमें पूर्व स्वर नष्ट हो जाता है, और उत्तर स्वर रह जाता है। जैसे प्र + एजते = प्र् अ + एजते = प्र् + एजते = प्रेजते।

पररूप-सन्धि के नियम पहले पहल विद्यार्थियों के लिए कठिन पड़ेंगे, इस कारण यहाँ नहीं लिखे गये।]

हल्सन्धिः

स्वर या हल् के साथ जो हलों (व्यञ्जन) की सन्धि होती है उसे हल या व्यञ्जनसन्धि कहते है।

(१) यदि सकार और तवर्ग को शकार और चवर्ग का योग हो तो उनको क्रम से शकार और चवर्ग हो जाते है। जैसे—

कस् + शेते = (स् + श = श्श) = कश्शेते
कस् + चित् = (स् + च = श्च) = कश्चित्
सत् + चित् = (त् + च = च्च) = सच्चित्
शत्रून् + जयति = (न् + ज = ञ्ज) = शत्रूञ्जयति

(२) यदि सकार और तवर्ग को षकार और टवर्ग का योग हो तो उनको क्रम से षकार और टवर्ग ही हो जाते है। जैसे—

रामस् + षष्ठः = (स् + ष = ष्ष) = रामष्षष्ठः
रामस् + टीकते = (स् + ट = ष्ट) = रामष्टीकते
तत् + टीका = (त् + ट = ट्ट) = तट्टीका
चक्रिन् + ढौकसे = (न् + ढ = ण्ढ) = चक्रिण्ढौकसे
पेष् + ता = (ष् + त = ष्ट) = पेष्टा

(३) यदि तवर्ग के आगे लकार हो तो उसको लकार ही हो जाता है। जैसे—

तत् + लयः = (त् + ल = ल्ल) = तल्लयः
भवान् + लिखति = (न् + ल = ँल्ल) = भवाँल्लिखति

(४) यदि किसी वर्ग के प्रथम या तृतीय वर्ण से कोई अनुनासिक वर्ण आगे रहे तो पूर्व वर्ण को उस वर्ग का सानुनासिक वर्ण हो जाता है। जैसे—

वाक् + मयम् = (क् + म = ङ्म) = वाङ्मयम्
सम्राट् + नयति = (ट् + न = ण्न) = सम्राण्नयति
जगत् + नाथ: = (त् + न = न्न) = जगन्नाथ:
चित् + मात्रम् = (त् + म = न्म) = चिन्मात्रम्
एतद् + मुरारि: = (द् + म = न्म) = एतन्मुरारि:

(५) यदि किसी वर्ग के पहले, दूसरे, तीसरे या चौथे वर्ण से उसी या अन्य वर्गों के तीसरे, चौथे, पाँचवें वर्ण अथवा स्वर आगे रहे तो उसको अपने वर्ग का तीसरा वर्ण हो जाता है। जैसे—

प्राक् + गमनम् = (क् + ग = ग्ग) = प्राग्गमनम्
वाक् + दंड: = (क् + द = ग्द) = वाग्दण्ड:
अच् + अन्त: = (च् + अ = ज) = अजन्त:
उत् + गमनम् = (त् + ग = द्ग) = उद्गमनम्
अप् + जात: = (प् + ज = ब्ज) = अब्जात:

(६) यदि किसी वर्ग के पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे वर्ण से हकार आगे रहे तो उस ह को उस वर्ग का चतुर्थ वर्ण हो जाता है। जैसे—

वाग् + हरि: = (ग् + ह = घ) = वाग्घरि:
उत् + हरणम् = (त् + ह = द्ध) = उद्धरणम्

(७) यदि किसी वर्ग के पहले, दूसरे, तीसरे या चौथे वर्ण से उसी या अन्य वर्गों के प्रथम या द्वितीय वर्ण अथवा 'श', 'ष', 'स' आगे रहे तो उसको अपने वर्ग का प्रथम वर्ण हो जाता है। जैसे—

सम्पद् + प्राप्ति: = (द् + प्रा = त्प्रा,) = सम्पत्प्राप्ति:
उद् + थानम् = (द् = थ = त्थ) = उत्थानम्
उद् + तम्भनम् = (द् + त = त्त) = उत्तम्भनम्
क्षुध् + संवरणम् = (ध् + स = त्स) = क्षुत्संवरणम्

(८) वर्ग के पहले और तीसरे वर्ण से आगे शकार हो तो उस श को छकार हो जाता है, यदि उससे आगे कोई अच् या अन्तःस्थ या अनुनासिक वर्ण हो। जैसे—

वाक् + शरः = (क् + श = क्छ) = वाक्छरः
हृत् + शयः = (त् + श = च्छ) = हृच्छयः
महत् + शृङ्खला = (त् + शृ = च्छृ) = महच्छृङ्खला

(९) यदि ह्रस्व स्वर से आगे छकार हो तो वह चकार से संयुक्त हो जाता है। जैसे—

परि + छेदः = (इ + छे = इच्छे) = परिच्छेदः
तरु + छाया = (उ + छा = उच्छा) = तरुच्छाया
अव + छेदः = (अ + छे = अच्छे) = अवच्छेदः

(१०) पदान्त मकार को यदि उसके आगे कोई व्यञ्जन हो तो अनुस्वार हो जाता है। जैसे—

गुरुम् + वन्दे = (म् + व = ं व) = गुरुं वन्दे
सत्वरम् + यासि = (म् + या = ं या) = सत्वरं यासि
धनम् + देहि = (म् + दे = ं दे) = धनं देहि

(११) यदि अपदान्त अनुस्वार से परे पाँचों वर्गों में से किसी वर्ग का कोई वर्ण हो तो अनुस्वार को उसी वर्ग का अनुनासिक वर्ण हो जाता है। जैसे—

अ + कितः = (ं + कि = ङ्कि) = अङ्कितः
अं + चितः = (ं + चि = ञ्चि) = अञ्चितः
कुं + ठितः = (ं + ठि = ण्ठि) = कुण्ठितः
नं + दितः = (ं + दि = न्दि) = नन्दितः
कं + पितः = (ं + पि = म्पि) = कम्पितः

पदान्त में विकल्प से होता है। जैसे—

त्वं + करोषि = (ं + क = ङ्क) = त्वङ्करोषि

त्वं + करोषि = (ं + क = ंक) = त्वं करोषि

(१२) अपदान्त नकार या मकार को अनुनासिक और अन्तःस्थ वर्णों को छोड़ कर कोई व्यञ्जन आगे हो तो उसको भी अनुस्वार हो जाता है। जैसे—

पयान् + सि = (न् + स = ंस) = पयांसि

रम् + स्यते = (म् + स्य = ंस्य) = रंस्यते

(१३) यदि पदान्त 'न्' के आगे (यदि वह ह्रस्व स्वर से आगे हो) कोई स्वर आवे तो 'न्' को द्वित्व होता है। जैसे—

पतन् + अर्भकः = (न् + अ = न्न) = पतन्नर्भकः

कुर्वन् + आस्ते = (न् + आ = न्ना) = कुर्वन्नास्ते

दीर्घ स्वर के परवर्त्ती 'न्' को द्वित्व नहीं होता है। जैसे—

विद्वान् + आगतः = (न् + आ = ना) = विद्वानागतः

(१४) यदि पदान्त 'न्' से आगे 'च', 'छ', 'ट', 'ठ', 'त' या 'थ' हो तो 'न्' को अनुस्वार होकर 'च' 'छ' को 'श' का आगम होता है। 'ट' 'ठ' को 'ष्' का आगम होता है और 'त' 'थ' को 'स्' का। जैसे—

कस्मिन् + चित् = (न् + च = ंश्च) = कस्मिंश्चित्

संशयान् + छेत्तुम् = (न् + छे = ंश्छे) = संशयांश्छेत्तुम्

कुर्वन् + टकारः = (न् + ट = ंष्ट) = कुर्वंष्टकारः

विद्वान् + ठक्कुरः = (न् + ठ = ंष्ठ) = विद्वांष्ठक्कुरः

महान् + तडागः = (न् + त = ंस्त) = महांस्तडागः

कुर्वन् + थूत्कारः = (न् + थू = ंस्थू) = कुर्वंस्थूत्कारः

विसर्गसन्धिः

स्वर या स्वर-संयुक्त व्यञ्जनों के साथ जो विसर्ग की सन्धि होती है उसे विसर्गसन्धि कहते हैं।

(१) यदि एक पद में या समास में इकार-उकार-पूर्वक विसर्ग से आगे 'क', 'ख', या 'प', 'फ' रहे तो विसर्ग को प्रायः मूर्द्धन्य 'ष्' हो जाता है। जैसे—

निः + कामः = (इः + का = इष्का) = निष्कामः
दुः + करम् = (उः + क = उष्क) = दुष्करम्
निः + खेदः = (इः + खे = इष्खे) = निष्खेदः
हविः + पानम् = (इः + पा = इष्पा) = हविष्पानम्
चतुः + पथम् = (उः + प = उष्प) = चतुष्पथम्
निः + फलम् = (इः + फ = इष्फ) = निष्फलम्
दुः + फलम् = (उः + फ = उष्फ) = दुष्फलम्

(२) कृ धातु से बना किसी पद से मिलने पर नमः और पुरः शब्दों के विसर्ग को 'स्' होता है। जैसे—

नमः + कृत्य = (ः + कृ = स्कृ) = नमस्कृत्य
पुरः + कारः = (ः + क = स्क) = पुरस्कारः

(३) वैसे तिरः के विसर्ग को विकल्प से 'स्' होता है।

तिरः + कारः (ः + का = स्का) = तिरस्कारः
तिरः + ,, (ः + ,, = ःका) = तिरःकारः

(४) यदि विसर्ग के आगे 'च', 'छ', हो तो विसर्ग को 'श' और यदि 'त' आगे हो तो 'स्' हो जाता है। जैसे—

निः + चिनोति = (ः + चि = श्चि) = निश्चिनोति

निः + छलः = (ः + छ = श्छ) = निश्छलः

निः + तारः = (ः + ता = स्ता) = निस्तारः

(५) यदि अकार के परे विसर्ग से वर्ग के तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम वर्ण या अन्तःस्थ वर्ण, या 'ह' आगे हो तो अकार और विसर्ग को 'ओ' आदेश हो जाता है। जैसे—

मनः + गतः = (अः + ग = ओ ग) = मनोगत.

मनः + जवः = (अः + ज = ओ ज) = मनोजव.

यशः + दा = (अः + दा = ओ दा) = यशोदा

मनः + भवः = (अः + भ = ओ भ) = मनोभवः

तेजः + मयः = (अः + म = ओ म) = तेजोमयः

मनः + रथः = (अः + र = ओ र) = मनोरथः

(६) यदि ह्रस्व अकार से आगे विसर्ग और उससे आगे फिर ह्रस्व अकार हो तो पूर्व 'अ' से मिलकर विसर्ग को 'ओ' आदेश हो जाता है और पर अकार उसी में मिल जाता है। जैसे—

मनः + अवधानम् = (अः + अ = ओऽ) = मनोऽवधानम्

शिवः + अर्च्यः = (अः + अ = ओऽ) = शिवोऽर्च्यः

(७) यदि अकार को छोड कर अन्य स्वरों से आगे विसर्ग हो और उनसे आगे वर्ग के तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम वर्ण या ह, य, व, ल, या स्वर वर्ण हो तो विसर्ग के स्थान में रेफ होता है। जैसे—

निः + गुणः = (इः + गु = इर्गु) = निर्गुणः

निः + जलम् = (इः + ज = इर्ज) = निर्जलम्

दुः + दान्तः = (उः + दा = उर्दा) = दुर्दान्तः

तरोः + वनम् = (ओः + व = ओर्व) = तरोर्वनम्

निः + हरणम् = (इः + ह = निह) = निर्हरणम्
निः + उपायः = (इः + उ = इरु) = निरुपायः

(८) 'अ' से आगे 'र' से आया हुआ विसर्ग हो* या 'इ', 'उ', से आगे कोई विसर्ग हो और उससे आगे रकार हो तो विसर्ग का लोप होकर उससे पूर्ववर्ण को दीर्घ हो जाता है। जैसे—

पुनः + रक्तम् = (अः + र = आर) = पुनारक्तम्
निः + रसः = (इः + र = ईर) = नीरस.
शम्भुः + राजते = (उः + रा = ऊरा) = शम्भूराजते

(९) यदि 'ए', 'ऐ', 'ओ' या 'औ' से आगे विसर्ग हो और उससे आगे रकार हो तो केवल विसर्ग का लोप होता है। जैसे—

हरेः + रमणी = (एः + र = एर) = हरे रमणी
नरैः + रक्ष्यते = (ऐः + र = ऐर) = नरै रक्ष्यते
साधोः + रुचिः = (ओः + रु = ओरु) = साधो रुचिः
ग्लौः + राजते = (औः + रा = औरा) = ग्लौ राजते

(१०) 'अ' से आगे विसर्ग का लोप हो जाता है जब कि उससे आगे ह्रस्व 'अ' को छोड़ कर कोई स्वर रहे। जैसे—

कुतः + आगतः = (अः + आ = अ आ) = कुत आगतः
नरः + इव = (अः + इ = अ इ) = नर इव
इतः + ऊर्ध्वम् = (अः + ऊ = अ ऊ) = इत ऊर्ध्वम्
देवः + ऋषिः = (अः + ऋ = अ ऋ) = देव ऋषिः
कः + एषः = (अः + ए = अ ए) = क एषः

(११) सः और एषः के विसर्ग का यदि आगे हल् या 'अ' भिन्न कोई स्वर हो तो लोप हो जाता है। जैसे—

---

*अन्तर्, पुनर्, प्रातर्, स्वर् या ऋकारान्त शब्दो के सम्बोधन के एकवचन में पितर्, मातर् प्रभृति शब्दों मे 'र्' के स्थान मे जो विसर्ग हो जाता है (मातः पितः इत्यादि) उसे रजात या 'र' से आया हुआ विसर्ग कहते है।

सः + क्रीडति = स क्रीडति   सः + आगतः = स आगतः
एषः + गच्छति = एष गच्छति   एषः + एति = एष एति

[णत्वविधिः

(१) 'ऋ', 'ॠ', 'र', 'ष' के आगे उसी पद का 'न' हो तो 'न' को 'ण' हो जाता है। जैसे, नृ + नाम् = नृणाम्, विस्तीर् + नम्, विस्तीर्णम्, पुष् + नाति = पुष्णाति।

(२) 'ऋ', 'ॠ', 'र' या 'ष' और न के बीच में, स्वरवर्ण, कवर्ग, पवर्ग, 'य', 'व', 'ह' और अनुस्वार हो तो भी 'न' को 'ण' हो जाता है। जैसे, गुर् + उ + ना = गुरुणा, मूर् + ख् + ए + न = मूर्खेण, ग्र् + अ + ह् + आ + नाम् = ग्रहाणाम्। परन्तु अन्य किसी वर्ण के व्यवधान में 'न' को 'ण' नहीं होगा; जैसे, रो + द + नम् = रोदनम् (रोदणम् नहीं)।

(३) पदान्त मे स्थित हलन्त 'न्' को 'ण' नहीं होता है, जैसे, पितॄन् (पितॄण् नही)।

(४) 'ऋ' प्रभृति और 'न' भिन्न पद मे होने से प्रायः 'न' को 'ण' नहीं होता है। परन्तु कई स्थानों मे भिन्न पद का 'न' भी उपसर्ग-प्रभृति पूर्वपद के 'ऋ', 'ॠ' 'र' या 'ष' के कारण से 'ण' हो जाता है, जैसे, प्र-वनम् = प्रवणम्, राम-अयनम् = रामायणम्, प्र-नमति = प्रणमति।

षत्वविधिः

(१) 'अ', 'आ' से भिन्न स्वर, कवर्ग या 'र' के आगे प्रत्यय का 'स' हो तो उसको 'ष' हो जाता है। जैसे, रामे + सु = रामेषु, दिक् + सु = दिक्षु, चतुर् + सु = चतुर्षु।

(२) 'इ' प्रभृति स्वर, कवर्ग या 'र' और 'स' के बीच मे अनुस्वार या विसर्ग हो तो भी 'स' को 'ष' होगा, अन्य वर्ण के व्यवधान से नहीं होता है। जैसे, धनू + ं + सि = धनूंषि, आयुः + ः + सु = आयुःषु।

(३) इनके अतिरिक्त और कई स्थानों मे 'इ' प्रभृति स्वर, कवर्ग या 'र' के आगे 'स' को 'ष' हो जाता है। जैसे, सि + सेवे = सिषेवे, नि + सद्य = निषद्य, मातृ + स्वसा = मातृष्वसा।]

शब्दरूपाणि

संस्कृत में संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषणो की सात विभक्तियाँ होती हैं। प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी (सम्बोधन प्रथमा के ही अन्तर्गत होता है) प्रत्येक विभक्ति के तीन तीन वचन होते हैं और इन्हीं विभक्तियो से २१ प्रत्यय होते हैं।

विभक्तय	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा		औ	अः
द्वितीया	अम्	औ	अः
तृतीया	आ	भ्याम्	भिः
चतुर्थी	ए	भ्याम्	भ्यः
पञ्चमी	अः	भ्याम्	भ्यः
षष्ठी	अः	ओः	आम्
सप्तमी	इ	ओः	सु

—

पुंलिङ्गशब्दरूपाणि

अकारान्त राम शब्द—किसी मनुष्य का नाम।

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्रथमा	रामः	रामौ	रामाः
द्वितीया	रामम्	,,	रामान्
तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
चतुर्थी	रामाय	,,	रामेभ्यः
पञ्चमी	रामात्	,,	,,
षष्ठी	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
सप्तमी	रामे	,,	रामेषु
सम्बोधन	हे राम	हे रामौ	हे रामाः

कवि—कविता करनेवाले

प्र०	कवि	कवी	कवय
द्वि०	कविम्	कवी	कवीन्
तृ०	कविना	कविभ्याम्	कविभि
च०	कवये	,,	कविभ्य
पं०	कवेः	,,	,,
ष०	,,	कव्योः	कवीनाम्
स०	कवौ	कव्योः	कविषु
सं०	हे कवे	हे कवी	हे कवयः

पति—स्वामी

प्र०	पतिः	पती	पतय·
द्वि०	पतिम्	पती	पतीन्

	ए०	द्वि०	ब०
तृ०	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
च०	पत्ये	,,	पतिभ्यः
पं०	पत्युः	,,	,,
ष०	,,	पत्योः	पतीनाम्
स०	पत्यौ	,,	पतिषु
सं०	हे पते	हे पती	हे पतयः

सखि—मित्र

प्र०	सखा	सखायौ	सखायः
द्वि०	सखायम्	,,	सखीन्
तृ०	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
च०	सख्ये	,,	सखिभ्यः
पं०	सख्युः	,,	,,
ष०	,,	सख्योः	सखीनाम्
स०	सख्यौ	,,	सखिषु
सं०	हे सखे	हे सखायौ	हे सखायः

सुधी—बुद्धिमान, विद्वान्

प्र०	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
द्वि०	सुधियम्	,,	,,
तृ०	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
च०	सुधिये	,,	सुधीभ्यः
पं०	सुधियः	,,	,,
ष०	,,	सुधियोः	सुधियाम्
स०	सुधियि	,,	सुधीषु
सं०	हे सुधीः	हे सुधियौ	हे सुधियः

शम्भु—शिव

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	शम्भुः	शम्भू	शम्भवः
द्वि०	शम्भुम्	शम्भू	शम्भून्
तृ०	शम्भुना	शम्भुभ्याम्	शम्भुभिः
च०	शम्भवे	,,	शम्भुभ्यः
पं०	शम्भोः	,,	,,
ष०	,,	शम्भ्वोः	शम्भूनाम्
स०	शम्भौ	,,	शम्भुषु
सं०	हे शम्भो	हे शम्भू	हे शम्भवः

पितृ—पिता

प्र०	पिता	पितरौ	पितरः
द्वि०	पितरम्	,,	पितॄन्
तृ०	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
च०	पित्रे	,,	पितृभ्यः
पं०	पितुः	,,	,,
ष०	,,	पित्रोः	पितॄणाम्
स०	पितरि	,,	पितृषु
सं०	हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः

गो—बैल

प्र०	गौः	गावौ	गावः
द्वि०	गाम्	,,	गाः
तृ०	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
च०	गवे	,,	गोभ्यः

	ए०	द्वि०	ब०
पं०	गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः
ष०	,,	गवोः	गवाम्
स०	गवि	,,	गोषु
सं०	हे गौः	हे गावौ	हे गावः

ददत्—देता हुआ

प्र०	ददत्	ददतौ	ददतः
द्वि०	ददतम्	,,	,,
तृ०	ददता	ददद्भ्याम्	ददद्भिः
च०	ददते	,,	ददद्भ्यः
पं०	ददतः	,,	,,
ष०	,,	ददतोः	ददताम्
स०	ददति	ददतोः	ददत्सु
सं०	हे ददत्	हे ददतौ	हे ददतः

राजन्—राजा

प्र०	राजा	राजानौ	राजानः
द्वि०	राजानम्	,,	राज्ञः
तृ०	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
च०	राज्ञे	,,	राजभ्यः
पं०	राज्ञः	,,	,,
ष०	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
स०	राज्ञि / राजनि	,,	राजसु
सं०	हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः

करिन्—हाथी

	ए०	द्वि०	ब०
प्र०	करी	करिणौ	करिणः
द्वि०	करिणम्	,,	,,
तृ०	करिणा	करिभ्याम्	करिभिः
च०	करिणे	,,	करिभ्यः
पं०	करिणः	,,	,,
ष०	करिणः	करिणो.	करिणाम्
स०	करिणि	,,	करिषु
सं०	हे करिन्	हे करिणौ	हे करिणः

आत्मन्

प्र०	आत्मा	आत्मानौ	आत्मान.
द्वि०	आत्मानम्	,,	आत्मनः
तृ०	आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः
च०	आत्मने	,,	आत्मभ्यः
पं०	आत्मनः	,,	,,
ष०	,,	आत्मनोः	आत्मनाम्
स०	आत्मनि	,,	आत्मसु
सं०	हे आत्मन्	हे आत्मानौ	हे आत्मानः

स्त्रीलिङ्गशब्दरूपाणि

रमा—लक्ष्मी

	ए०	द्वि०	ब०
प्र०	रमा	रमे	रमाः
द्वि०	रमाम्	,,	,,
तृ०	रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः
च०	रमायै	,,	रमाभ्यः
पं०	रमायाः	,,	,,
ष०	,,	रमयोः	रमाणाम्
स०	रमायाम्	,,	रमासु
सं०	हे रमे	हे रमे	हे रमाः

रुचि—कान्ति, अनुराग

प्र०	रुचिः	रुची	रुचयः
द्वि०	रुचिम्	,,	रुचीः
तृ०	रुच्या	रुचिभ्याम्	रुचिभिः
च०	रुच्यै, रुचये	,,	रुचिभ्यः
पं०	रुच्याः, रुचेः	,,	,,
ष०	रुच्याः, रुचेः	रुच्योः	रुचीनाम्
स०	रुच्याम्, रुचौ	,,	रुचिषु
सं०	हे रुचे	हे रुची	हे रुचयः

नदी

	ए०	द्वि०	ब०
प्र०	नदी	नद्यौ	नद्यः
द्वि०	नदीम्	,,	नदीः
तृ०	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
च०	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
पं०	नद्याः	,,	,,
ष०	,,	नद्योः	नदीनाम्
स०	नद्याम्	,,	नदीषु
सं०	हे नदि	हे नद्यौ	हे नद्यः

श्री—लक्ष्मी, शोभा

प्र०	श्री.	श्रियौ	श्रियः
द्वि०	श्रियम्	,,	,,
तृ०	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
च०	श्रियै, श्रिये	,,	श्रीभ्य.
पं०	श्रियाः, श्रिय'	,,	,,
ष०	,, ,,	श्रियोः	श्रीणाम्, श्रियाम्
स०	श्रियाम्, श्रियि	,,	श्रीषु
सं०	हे श्री.	हे श्रियौ	हे श्रियः

स्त्री

प्र०	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रिय.
द्वि०	स्त्रियम्, स्त्रीम्	,,	स्त्रिय., स्त्रीः
तृ०	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः
च०	स्त्रियै	,,	स्त्रीभ्य.

	ए०	द्वि०	ब०
पं०	स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्य.
ष०	,,	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
स०	स्त्रियाम्	,,	स्त्रीषु
सं०	हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः

धेनु—गाय

प्र०	धेनुः	धेनू	धेनवः
द्वि०	धेनुम्	,,	धेनू.
तृ०	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
च०	धेन्वै, धेनवे	,,	धेनुभ्यः
पं०	धेन्वा., धेनोः	,,	,,
ष०	,, ,,	धेन्वोः	धेनूनाम्
स०	धेन्वाम्, धेनौ	,,	धेनुषु
सं०	हे धेनो	हे धेनू	हे धेनवः

वधू—वहू

प्र०	वधूः	वध्वौ	वध्वः
द्वि०	वधूम्	,,	वधूः
तृ०	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
च०	वध्वै	,,	वधूभ्यः
पं०	वध्वाः	,,	,,
ष०	,,	वध्वोः	वधूनाम्
स०	वध्वाम्	,,	वधूषु
सं०	हे वधु	हे वध्वौ	हे वध्व.

मातृ—माता

	ए०	द्वि०	ब०
प्र०	माता	मातरौ	मातरः
द्वि०	मातरम्	,,	मातॄः
तृ०	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
च०	मात्रे	,,	मातृभ्यः
प०	मातुः	,,	,,
ष०	मातुः	मात्रोः	मातॄणाम्
स०	मातरि	,,	मातृषु
सं०	हे मातः	हे मातरौ	हे मातरः

नपुंसकलिङ्गशब्दरूपाणि

ज्ञान

	ए०	द्वि०	ब०
प्र०	ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	ज्ञानेन	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानैः
च०	ज्ञानाय	,,	ज्ञानेभ्यः
पं०	ज्ञानात्	,,	,,
ष०	ज्ञानस्य	ज्ञानयोः	ज्ञानानाम्
स०	ज्ञाने	,,	ज्ञानेषु
सं०	हे ज्ञान	हे ज्ञाने	हे ज्ञानानि

वारि—जल

प्र०	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
च०	वारिणे	,,	वारिभ्यः
पं०	वारिणः	,,	,,
ष०	,,	वारिणोः	वारीणाम्
स०	वारिणि	,,	वारिषु
सं०	हे वारे, हे वारि	हे वारिणी	हे वारीणि

दधि—दही

	ए०	द्वि०	ब०
प्र०	दधि	दधिनी	दधीनि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः
च०	दध्ने	,,	दधिभ्यः
पं०	दध्नः	,,	,,
ष०	दध्नः	दध्नोः	दध्नाम्
स०	दध्नि, दधनि	,,	दधिषु
सं०	हे दधे, हे दधि	हे दधिनी	हे दधीनि

मधु—शहद

प्र०	मधु	मधुनी	मधूनि
द्वि	,,	,,	,,
तृ०	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
च०	मधुन	,,	मधुभ्य·
पं०	मधुन.	,,	,,
ष०	,,	मधुनोः	मधूनाम्
स०	मधुनि	,,	मधुषु
सं०	हे मधो, हे मधु	हे मधुनी	हे मधूनि

जगत्—संसार

प्र०	जगत्	जगती	जगन्ति
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भिः
च०	जगत	,,	जगद्भ्यः

	ए०	द्वि०	ब०
पं०	जगतः	जगद्भ्याम्	जगद्भ्यः
ष०	,,	जगतोः	जगताम्
स०	जगति	,,	जगत्सु
सं०	हे जगत्	हे जगती	हे जगन्ति

नामन्—नाम

प्र०	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
द्वि०	,,	,, , ,,	,,
तृ०	नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः
च०	नाम्ने	,,	नामभ्यः
पं०	नाम्नः	,,	,,
ष०	,,	नाम्नोः	नाम्नाम्
स०	नाम्नि, नामनि	,,	नामसु
सं०	हे नाम, हे नामन्	हे नाम्नी, हे नामनी	हे नामानि

पयस्—दूध

प्र०	पयः	पयसी	पयांसि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः
च०	पयसे	,,	पयोभ्यः
पं०	पयसः	,,	,,
ष०	,,	पयसोः	पयसाम्
स०	पयसि	,,	पयस्सु
सं०	हे पयः	हे पयसी	हे पयांसि

सर्वनामशब्दरूपाणि

इदम्—यह

पुंलिङ्ग

	ए०	द्वि०	ब०
प्र०	अयम्	इमौ	इमे
द्वि०	इमम्, एनम्	,, एनौ	इमान्, एनान्
तृ०	अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभिः
च०	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पं०	अस्मात्	,,	एभ्यः
ष०	अस्य	अनयोः, एनयोः	एषाम्
स०	अस्मिन्	,, , ,,	एषु

सर्वनाम शब्दों का सम्बोधन नहीं होता है।

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	इयम्	इमे	इमाः
द्वि०	इमाम्, एनाम्	,, , एने	,, , एनाः
तृ०	अनया, एनया	आभ्याम्	आभिः
च०	अस्यै	,,	आभ्यः
पं०	अस्याः	,,	,,
ष०	,,	अनयोः, एनयोः	आसाम्
स०	अस्याम्	,, , ,,	आसु

नपुंसकलिङ्ग

प्र०	इदम्	इमे	इमानि
द्वि०	,, , एनत्	,, , एने	,, , एनानि

शेष विभक्तियो के रूप पुलिङ्ग की तरह होते है।

तद्—वह

पुंलिङ्ग

	ए०	द्वि०	ब०
प्र०	सः	तौ	ते
द्वि०	तम्	,,	तान्
तृ०	तेन	ताभ्याम्	तैः
च०	तस्मै	,,	तेभ्यः
पं०	तस्मात्	,,	,,
ष०	तस्य	तयोः	तेषाम्
स०	तस्मिन्	,,	तेषु

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	सा	ते	ताः
द्वि०	ताम्	,,	,,
तृ०	तया	ताभ्याम्	ताभिः
च०	तस्यै	,,	ताभ्यः
पं०	तस्याः	,,	,,
ष०	,,	तयोः	तासाम्
स०	तस्याम्	,,	तासु

नपुं०

प्र०	तत्	ते	तानि
द्वि०	,,	,,	,,

शेष विभक्तियों के रूप पुंलिङ्ग की तरह होते हैं।

यद्—जो

पुं०

	ए०	द्वि०	ब०
प्र०	यः	यौ	ये
द्वि०	यम्	,,	यान्
तृ०	येन	याभ्याम्	यैः
च०	यस्मै	,,	येभ्यः
पं०	यस्मात्	,,	,,
ष०	यस्य	ययोः	येषाम्
स०	यस्मिन्	,,	येषु

स्त्री०

प्र०	या	ये	याः
द्वि०	याम्	,,	,,
तृ०	यया	याभ्याम्	याभिः
च०	यस्यै	,,	याभ्यः
पं०	यस्याः	,,	,,
ष०	,,	ययोः	यासाम्
स०	यस्याम्	,,	यासु

नपुं०

प्र०	यत्	ये	यानि
द्वि०	,,	,,	,,

शेष विभक्तियों के रूप पुंलिङ्ग की तरह होते हैं ।

किम्—कान

पुं०

	ए०	द्वि०	ब०
प्र०	कः	कौ	के
द्वि०	कम्	,,	कान्
तृ०	केन	काभ्याम्	कैः
च०	कस्मै	,,	केभ्यः
पं०	कस्मात्	,,	,,
ष०	कस्य	कयोः	केषाम्
स०	कस्मिन्	,,	केषु

स्त्री०

प्र०	का	के	काः
द्वि०	काम्	,,	,,
तृ०	कया	काभ्याम्	काभिः
च०	कस्यै	काभ्याम्	काभ्यः
पं०	कस्याः	,,	काभ्य
ष०	,,	कयोः	कासाम्
स०	कस्याम्	कयोः	कासु

नपुं०

प्र०	किम्	के	कानि
द्वि०	,,	,,	,,

शेष विभक्तियो के रूप पुलिङ्ग के समान होते हैं।

एतद्—यह

	ए०	द्वि०	ब०
प्र०	एषः	एतौ	एते
द्वि०	एतम्, एनम्	,, , एनौ	एतान्, एनान्
तृ०	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतैः
च०	एतस्मै	,,	एतेभ्यः
पं०	एतस्मात्	,,	,,
ष०	एतस्य	एतयोः, एनयोः	एतेषाम्
स०	एतस्मिन्	,, , ,,	एतेषु

स्त्री०

प्र०	एषा	एते	एताः
द्वि०	एताम्, एनाम्	,, , एने	,, , एनाः
तृ०	एतया, एनया	एताभ्याम्	एताभिः
च०	एतस्यै	,,	एताभ्यः
पं०	एतस्याः	,,	,,
ष०	,,	एतयोः, एनयोः	एतासाम्
स०	एतस्याम्	,, , ,,	एतासु

नपुं०

प्र०	एतत्	एते	एतानि
द्वि०	,, , एनत्	,, , एने	,, , एनानि

शेष विभक्तियों के रूप पुल्लिङ्ग के समान होते हैं।

अदस्—वह

	ए०	द्वि०	ब०
प्र०	असौ	अमू	अमी
द्वि०	अमुम्	,,	अमून्
तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
च०	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पं०	अमुष्मात्	,,	,,
ष०	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
स०	अमुष्मिन्	,,	अमीषु

स्त्री०

प्र०	असौ	अमू	अमूः
द्वि०	अमूम्	,,	,,
तृ०	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
च०	अमुष्यै	,,	अमूभ्यः
पं०	अमुष्याः	,,	अमूभ्यः
ष०	,,	अमुयोः	अमूषाम्
स०	अमुष्याम्	,,	अमूषु

नपुं०

प्र०	अदः	अमू	अमूनि
द्वि०	,,	,,	,,

शेष विभक्तियों के रूप पुंलिङ्ग के समान होते हैं।

संख्यावाचकाः शब्दाः

	एक शब्द			द्वि शब्द	
	ए० व०			द्वि० व०	
	पुं०	स्त्री०	नपुं०	पुं०	स्त्री० और नपुं०
प्र०	एकः	एका	एकम्	द्वौ	द्वे
द्वि०	एकम्	एकाम्	,,	,,	,,
तृ०	एकेन	एकया	एकेन	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
च०	एकस्मै	एकस्यै	एकस्मै	,,	,,
प०	एकस्मात	एकस्याः	एकस्मात्	,,	,,
ष०	एकस्य	,,	एकस्य	द्वयोः	द्वयोः
स०	एकस्मिन्	एकस्याम्	एकस्मिन्	,,	,,

'एक' शब्द एकवचन में आता है, किन्तु यदि उसके अनेक अभिधेय हों तो बहुवचन में भी आता है।

'द्वि' शब्द केवल द्विवचन में आता है। इसके बाद के संख्या-वाचक शब्द सब केवल बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं।

त्रि—तीन

	पुंलिङ्ग	नपुंसक	स्त्री०
प्र०	त्रय.	त्रीणि	तिस्रः
द्वि०	त्रीन्	,,	,,
तृ०	त्रिभिः	त्रिभिः	तिसृभिः
च०	त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः
पं०	,,	,,	,,
ष०	त्रयाणाम्	त्रयाणाम्	तिसृणाम्
स०	त्रिषु	त्रिषु	तिसृषु

चतुर्—चार

प्र०	चत्वारः	चत्वारि	चतस्रः
द्वि०	चतुरः	,,	,,
तृ०	चतुर्भिः	चतुर्भिः	चतसृभिः
च०	चतुर्भ्यः	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः
पं०	,,	,,	,,
ष०	चतुर्णाम्	चतुर्णाम्	चतसृणाम्
स०	चतुर्षु	चतुर्षु	चतसृषु

पञ्चन् = पाँच, षष् = छः, सप्त = सात, नवन् = नव, दशन् = दश

प्र०	पञ्च	षट्	सप्त	नव	दश
द्वि०	,,	,,	,,	नव	दश
तृ०	पञ्चभि.	षड्भिः	सप्तभि·	नवभि.	दशभिः
च०	पञ्चभ्यः	षड्भ्यः	सप्तभ्यः	नवभ्य·	दशभ्य
पं०	पन्चभ्य	,,	,,	,,	,,
ष०	पञ्चानाम्	षण्णाम्	सप्तानाम्	नवानाम्	दशानाम्
स०	पञ्चसु	षट्सु	सप्तसु	नवसु	दशसु

पन्चन् शब्द से लेकर नवदशन् तक सब शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में समान होते है।

अष्टन्–आठ

	ब० व०
प्र०	अष्टौ, अष्ट
द्वि०	,, , ,,
तृ०	अष्टभि , अष्टाभि
च०	अष्टभ्यः, अष्टाभ्यः
पं०	,, , ,,
ष०	अष्टानाम्
स०	अष्टसु, अष्टासु

ऊनविंशति से लेकर आगे सब संख्यावाचक शब्द एकवचन में आते है। जैसे, विंशतिः वृक्षाः, पन्चविंशतिः कन्याः, त्रिंशत् फलानि। पर जब उस संख्या के कई का अर्थ हो तो तीनों वचन में आते है। यथा—एक शतम्, द्वे शते, त्रीणि शतानि (एक, दो या तीन सौ)।

एकादश	११
द्वादश	१२
त्रयोदश	१३
चतुर्दश	१४
पन्चदश	१५
षोडश	१६
सप्तदश	१७
अष्टादश	१८
नवदश ऊनविंशतिः	१९
विंशतिः	२०
एकविंशतिः	२१
द्वाविंशतिः	२२
त्रयोविंशतिः	२३
चतुर्विंशतिः	२४
......	
नवविंशतिः ऊनत्रिंशत्	२९
त्रिंशत्	३०
नवत्रिंशत् ऊनचत्वारिंशत्	३९
चत्वारिंशत्	४०
नवचत्वारिंशत् ऊनपन्चाशत्	४९
पन्चाशत्	५०
षष्टिः	६०
सप्ततिः	७०
अशीतिः	८०
द्व्यशीतिः	८२
नवतिः	९०
षण्णवतिः	९६
शतम्	१००
एकाधिकशतम्	१०१
द्व्यधिकशतम्	१०२
त्र्यधिकशतम्	१०३
दशाधिकशतम्	११०
द्वे शते	२००
त्रीणि शतानि	३००
सहस्रम्	१०००
लक्षम्	१०००००
कोटिः	१०००००००

धातुरूपाणि

क्रिया के दस गण होते हैं—

(१) भ्वादिगण (२) अदादिगण (३) जुहोत्यादिगण
(४) दिवादिगण (५) स्वादिगण (६) तुदादिगण
(७) रुधादिगण (८) तनादिगण (९) क्र्यादिगण
(१०) चुरादिगण।

भ्वाद्यदादी जुहोत्यादिर्दिवादिः स्वादिरेव च।
तुदादिश्च रुधादिश्च तनक्र्यादिचुरादयः॥

जैसा कि हम पहले कह आये हैं कि कुछ क्रियायें परस्मैपदी, कुछ आत्मनेपदी और कुछ उभयपदी होती है, इसी प्रकार से हम वहीं कह आये हैं कि क्रिया के नव लकार होते हैं। इस पुस्तक में हम धातुओं के रूप केवल पाँच लकारों में देंगे—लट्, लोट्, (विधि) लिङ्, लङ् और लृट्। इन लकारों के स्थान में निम्नलिखित प्रत्यय होते हैं।

लट् (वर्तमान)

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	ति	तः	अन्ति	ते	आते	अन्ते
म० पु०	सि	थः	थ	से	आथे	ध्वे
उ० पु०	मि	वः	मः	ए	वहे	महे

लोट् (आज्ञा)

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
प्र० पु०	तु	ताम्	अन्तु	ताम्	आताम्	अन्ताम्
म० पु०	हि	तम्	त	स्व	आथाम्	ध्वम्
उ० पु०	आनि	आव	आम	ऐ	आवहै	आमहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	यात्	याताम्	युः	ईत	ईयाताम्	ईरन्
म० पु०	याः	यातम्	यात	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
उ० पु०	याम्	याव	याम	ईय	ईवहि	ईमहि

लङ् (अनद्यतनभूत)

प्र० पु०	त्	ताम्	अन्	त	आताम्	अन्त
म० पु०	ः	तम्	त	थाः	आथाम्	ध्वम्
उ० पु०	अम्	व	म	इ	वहि	महि

लृट् (सामान्यभविष्य)

प्र० पु०	स्यति	स्यतः	स्यन्ति	स्यते	स्येते	स्यन्ते
म० पु०	स्यसि	स्यथः	स्यथ	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
उ० पु०	स्यामि	स्याव	स्याम	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

परस्मैपदी

(१) भ्वादिगण

पठ्—पढ़ना

वर्त्तमान काल (लट् लकार)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	पठति	पठतः	पठन्ति
म० पु०	पठसि	पठथः	पठथ
उ० पु०	पठामि	पठावः	पठाम॰

आज्ञा (लोट्)

प्र० पु०	पठतु	पठताम्	पठन्तु
म० पु०	पठ	पठतम्	पठत
उ० पु०	पठानि	पठाव	पठाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	पठेत्	पठेताम्	पठेयुः
म० पु०	पठे॰	पठेतम्	पठेत
उ० पु०	पठेयम्	पठेव	पठेम

अनद्यतनभूत (लङ)

प्र० पु०	अपठत्	अपठताम्	अपठन्
म० पु०	अपठः	अपठतम्	अपठत
उ० पु०	अपठम्	अपठाव	अपठाम

सामान्यभविष्य (लृट्)

	एक० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति
म० पु०	पठिष्यसि	पठिष्यथः	पठिष्यथ
उ० पु०	पठिष्यामि	पठिष्यावः	पठिष्यामः

(२) अदादिगण

अस्—होना

(वर्त्तमानकाल) लट्

प्र० पु०	अस्ति	स्तः	सन्ति
म० पु०	असि	स्थः	स्थ
उ० पु०	अस्मि	स्वः	स्मः

आज्ञा (लोट्)

प्र० पु०	अस्तु	स्ताम्	सन्तु
म० पु०	एधि	स्तम्	स्त
उ० पु०	असानि	असाव	असाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	स्यात्	स्याताम्	स्युः
म० पु०	स्याः	स्यातम्	स्यात
उ० पु०	स्याम्	स्याव	स्याम

अनद्यतनभूत (लङ्)

	एकव०	द्वि०	बहुव०
प्र० पु०	आसीत्	आस्ताम्	आसन्
म० पु०	आसीः	आस्तम्	आस्त
उ० पु०	आसम्	आस्व	आस्म

सामान्यभविष्य (लृट्)

प्र० पु०	भविष्यति	भविष्यत	भविष्यन्ति
म० पु०	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
उ० पु०	भविष्यामि	भविष्याव	भविष्यामः

(३) ह्वादि (जुहोत्यादि) गण

दा—देना

वर्त्तमान (लट्)

प्र० पु०	ददाति	दत्तः	ददति
म० पु०	ददासि	दत्थः	दत्थ
उ० पु०	ददामि	दद्वः	दद्मः

आज्ञा (लोट्)

प्र० पु०	ददातु	दत्ताम्	ददतु
म० पु०	देहि	दत्तम्	दत्त
उ० पु०	ददानि	ददाव	ददाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	दद्यात्	दद्याताम्	दद्युः
म० पु०	दद्याः	दद्यातम्	दद्यात
उ० पु०	दद्याम्	दद्याव	दद्याम

अनद्यतनभूत (लङ्)

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र० पु०	अददात्	अदत्ताम्	अददुः
म० पु०	अददाः	अदत्तम्	अदत्त
उ० पु०	अददाम्	अदद्व	अदद्म

सामान्यभविष्य (लृट्)

प्र० पु०	दास्यति	दास्यत	दास्यन्ति
म० पु०	दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ
उ० पु०	दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः

(४) दिवादिगण

नृत्—नाचना

वर्त्तमान (लट्)

प्र० पु०	नृत्यति	नृत्यतः	नृत्यन्ति
म० पु०	नृत्यसि	नृत्यथ	नृत्यथ
उ० पु०	नृत्यामि	नृत्याव·	नृत्यामः

आज्ञा (लोट्)

प्र० पु०	नृत्यतु	नृत्यताम्	नृत्यन्तु
म० पु०	नृत्य	नृत्यतम्	नृत्यत
उ० पु०	नृत्यानि	नृत्याव	नृत्याम

विधिलिङ्

प्र० पु०	नृत्येत्	नृत्येताम्	नृत्येयुः
म० पु०	नृत्ये	नृत्येतम्	नृत्येत
उ० पु०	नृत्येयम्	नृत्येव	नृत्येम

अनद्यतनभूत (लङ्)

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र० पु०	अनृत्यत्	अनृत्यताम्	अनृत्यन्
म० पु०	अनृत्यः	अनृत्यतम्	अनृत्यत
उ० पु०	अनृत्यम्	अनृत्याव	अनृत्याम

सामान्यभविष्य (लृट्)

प्र० पु०	नर्त्तिष्यति, नर्त्स्यति	नर्त्तिष्यत. नर्त्स्यत	नर्त्तिष्यन्ति, नर्त्स्यन्ति
म० पु०	नर्त्तिष्यसि, नर्त्स्यसि	नर्त्तिष्यथः, नर्त्स्यथ	नर्त्तिष्यथ, नर्त्स्यथ
उ० पु०	नर्त्तिष्यामि, नर्त्स्यामि	नर्त्तिष्याव., नर्त्स्याव	नर्त्तिष्याम., नर्त्स्यामः

(५) स्वादिगण

श्रु—सुनना

वर्त्तमान (लट्)

प्र० पु०	शृणोति	शृणुत·	शृण्वन्ति
म० पु०	शृणोपि	शृणुथ.	शृणुथ
उ० पु०	शृणोमि	शृणुव, शृण्वः	शृणुम, शृण्मः

आज्ञा (लोट्)

प्र० पु०	शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु
म० पु०	शृणु	शृणुतम्	शृणुत
उ० पु०	शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम

विधिलिङ्

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र० पु०	शृणुयात	शृणुयाताम्	शृणुयुः
म० पु०	शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात
उ० पु०	शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम

अनद्यतनभूत (लङ्)

प्र० पु०	अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्
म० पु०	अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत
उ० पु०	अशृणवम्	अशृणुव, अशृण्व	अशृणुम, अशृण्म

सामान्यभविष्य (लृट्)

प्र० पु०	श्रोष्यति	श्रोष्यत	श्रोष्यन्ति
म० पु०	श्रोष्यसि	श्रोष्यथः	श्रोष्यथ
उ० पु०	श्रोष्यामि	श्रोष्यावः	श्रोष्यामः

(६) तुदादिगण

प्रच्छ्—पूँछना

वर्त्तमानकाल (लट्)

प्र० पु०	पृच्छति	पृच्छतः	पृच्छन्ति
म० पु०	पृच्छसि	पृच्छथ	पृच्छथ
उ० पु०	पृच्छामि	पृच्छावः	पृच्छामः

आज्ञा (लोट्)

प्र० पु०	पृच्छतु	पृच्छताम्	पृच्छन्तु
म० पु०	पृच्छ	पृच्छतम्	पृच्छत
उ० पु०	पृच्छानि	पृच्छाव	पृच्छाम

विधिलिङ्

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र० पु०	पृच्छेत्	पृच्छेताम्	पृच्छेयुः
म० पु०	पृच्छेः	पृच्छेतम्	पृच्छेत
उ० पु०	पृच्छेयम्	पृच्छेव	पृच्छेम

अनद्यतनभूत (लङ्)

प्र० पु०	अपृच्छत्	अपृच्छताम्	अपृच्छन्
म० पु०	अपृच्छः	अपृच्छतम्	अपृच्छत
उ० पु०	अपृच्छम्	अपृच्छाव	अपृच्छाम

सामान्यभविष्य (लृट्)

प्र० पु०	प्रक्ष्यति	प्रक्ष्यतः	प्रक्ष्यन्ति
म० पु०	प्रक्ष्यसि	प्रक्ष्यथः	प्रक्ष्यथ
उ० पु०	प्रक्ष्यामि	प्रक्ष्यावः	प्रक्ष्यामः

(७) रुधादिगण

रुध्—रोकना

वर्त्तमान (लट्)

प्र० पु०	रुणद्धि	रुन्धः	रुन्धन्ति
म० पु०	रुणत्सि	रुन्धः	रुन्ध
उ० पु०	रुणध्मि	रुन्ध्वः	रुन्ध्मः

आज्ञा (लोट्)

प्र० पु०	रुणद्धु	रुन्धाम्	रुन्धन्तु
म० पु०	रुन्धि	रुन्धम्	रुन्ध
उ० पु०	रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम

विधिलिङ्

		एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	पु०	रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्यु
म०	पु०	रुन्ध्याः	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात
उ०	पु०	रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम

अनद्यतनभूत (लङ्)

प्र०	पु०	अरुणत्	अरुन्धाम्	अरुन्धन्
म०	पु०	अरुणः, अरुणत्	अरुन्धम्	अरुन्ध
उ०	पु०	अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म

सामान्यभविष्य (लृट्)

प्र०	पु०	रोत्स्यति	रोत्स्यतः	रोत्स्यन्ति
म०	पु०	रोत्स्यसि	रोत्स्यथः	रोत्स्यथ
उ०	पु०	रोत्स्यामि	रोत्स्यावः	रोत्स्यामः

(८) तनादिगण

कृ—करना

वर्त्तमान (लट्)

प्र०	पु०	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति
म०	पु०	करोषि	कुरुथः	कुरुथ
उ०	पु०	करोमि	कुर्वः	कुर्मः

आज्ञा (लोट्)

प्र०	पु०	करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु
म०	पु०	कुरु	कुरुतम्	कुरुत
उ०	पु०	करवाणि	करवाव	करवाम

विधिलिङ्

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र० पु०	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युं
म० पु०	कुर्या	कुर्यातम्	कुर्यात
उ० पु०	कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम

अनद्यतनभूत (लङ्)

प्र० पु०	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
म० पु०	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत
उ० पु०	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म

सामान्यभविष्य (लृट्)

प्र० पु०	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति
म० पु०	करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ
उ० पु०	करिष्यामि	करिष्याव	करिष्यामः

(९) क्र्यादिगण

ज्ञा—जानना

वर्त्तमान (लट्)

प्र० पु०	जानाति	जानीतः	जानन्ति
म० पु०	जानासि	जानीथः	जानीथ
उ० पु०	जानामि	जानीवः	जानीमः

आज्ञा (लोट्)

प्र० पु०	जानातु	जानीताम्	जानन्तु
म० पु०	जानीहि	जानीतम्	जानीत
उ० पु०	जानानि	जानाव	जानाम

विधिलिङ्

		एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	पु०	जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयुः
म०	पु०	जानीयाः	जानीयातम्	जानीयात
उ०	पु०	जानीयाम्	जानीयाव	जानीयाम

अनद्यतनभूत (लङ्)

प्र०	पु०	अजानात्	अजानीताम्	अजानन्
म०	पु०	अजानाः	अजानीतम्	अजानीत
उ०	पु०	अजानाम्	अजानीव	अजानीम

सामान्यभविष्य (लृट्)

प्र०	पु०	ज्ञास्यति	ज्ञास्यतः	ज्ञास्यन्ति
म०	पु०	ज्ञास्यसि	ज्ञास्यथः	ज्ञास्यथ
उ०	पु०	ज्ञास्यामि	ज्ञास्यावः	ज्ञास्यामः

(१०) चुरादिगण

भक्ष—खाना

वर्त्तमान (लट्)

प्र०	पु०	भक्षयति	भक्षयतः	भक्षयन्ति
म०	पु०	भक्षयसि	भक्षयथः	भक्षयथ
उ०	पु०	भक्षयामि	भक्षयावः	भक्षयामः

आज्ञा (लोट्)

प्र०	पु०	भक्षयतु	भक्षयताम्	भक्षयन्तु
म०	पु०	भक्षय	भक्षयतम्	भक्षयत
उ०	पु०	भक्षयाणि	भक्षयाव	भक्षयाम

विधिलिङ्

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र० पु०	भक्षयेत्	भक्षयेताम्	भक्षयेयुः
म० प्र०	भक्षयेः	भक्षयेतम्	भक्षयेत
उ० पु०	भक्षयेयम्	भक्षयेव	भक्षयेम

अनद्यतनभूत (लङ्)

प्र० पु०	अभक्षयत्	अभक्षयताम्	अभक्षयन्
म० पु०	अभक्षयः	अभक्षयतम्	अभक्षयत
उ० पु०	अभक्षयम्	अभक्षयाव	अभक्षयाम

सामान्यभविष्य (लृट्)

प्र० पु०	भक्षयिष्यति	भक्षयिष्यतः	भक्षयिष्यन्ति
म० पु०	भक्षयिष्यसि	भक्षयिष्यथः	भक्षयिष्यथ
उ० पु०	भक्षयिष्यामि	भक्षयिष्यावः	भक्षयिष्यामः

आत्मनेपदी

(१) भ्वादिगण

सेव्—सेवा करना

लट्

		ए०व०	द्वि०	ब०व०
प्र०	पु०	सेवते	सेवेते	सेवन्ते
म०	पु०	सेवसे	सेवेथे	सेवध्वे
उ०	पु०	सेवे	सेवावहे	सेवामहे

लोट्

प्र०	पु०	सेवताम्	सेवेताम्	सेवन्ताम्
म०	पु०	सेवस्व	सेवेथाम्	सेवध्वम्
उ०	पु०	सेवै	सेवावहै	सेवामहै

विधिलिङ्

प्र०	पु०	सेवेत	सेवेयाताम्	सेवेरन्
म०	पु०	सेवेथा.	सेवेयाथाम्	सेवेध्वम्
उ०	पु०	सेवेय	सेवेवहि	सेवेमहि

लङ्

प्र०	पु०	असेवत	असेवेताम्	असेवन्त
म०	पु०	असेवथाः	असेवेथाम्	असेवध्वम्
उ०	पु०	असेवे	असेवावहि	असेवामहि

लृट्

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र० पु०	सेविष्यते	सेविष्येते	सेविष्यन्ते
म० पु०	सेविष्यसे	सेविष्येथे	सेविष्यध्वे
उ० पु०	सेविष्ये	सेविष्यावहे	सेविष्यामहे

(२) अदादिगण

ब्रू—कहना

लट्

प्र० पु०	ब्रूते	ब्रुवाते	ब्रुवते
म० पु०	ब्रूषे	ब्रुवाथे	ब्रूध्वे
उ० पु०	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे

लोट्

प्र० पु०	ब्रूताम्	ब्रुवाताम्	ब्रुवताम्
म० पु०	ब्रूष्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्वम्
उ० पु०	ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	ब्रुवीत	ब्रुवीयाताम्	ब्रुवीरन्
म० पु०	ब्रुवीथाः	ब्रुवीयाथाम्	ब्रुवीध्वम्
उ० पु०	ब्रुवीय	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि

लङ्

प्र० पु०	अब्रूत	अब्रुवाताम्	अब्रुवत
म० पु०	अब्रूथाः	अब्रुवाथाम्	अब्रूध्वम्
उ० पु०	अब्रुवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि

लृट्

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र० पु०	वक्ष्यते	वक्ष्येते	वक्ष्यन्ते
म० पु०	वक्ष्यसे	वक्ष्येथे	वक्ष्यध्वे
उ० पु०	वक्ष्ये	वक्ष्यावहे	वक्ष्यामहे

(३) ह्वादि (जुहोत्यादि) गण

दा—देना

लट्

प्र० पु०	दत्ते	ददाते	ददते
म० पु०	दत्से	ददाथे	दद्ध्वे
उ० पु०	ददे	दद्वहे	दद्महे

लोट्

प्र० पु०	दत्ताम्	ददाताम्	ददताम्
म० पु०	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
उ० पु०	ददै	ददावहै	ददामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	ददीत	ददीयाताम्	ददीरन्
म० पु०	ददीथाः	ददीयाथाम्	ददीध्वम्
उ० पु०	ददीय	ददीवहि	ददीमहि

लङ्

प्र० पु०	अदत्त	अददाताम्	अददत
म० पु०	अदत्थाः	अददाथाम्	अदद्ध्वम्
उ० पु०	अददि	अदद्वहि	अदद्महि

लृट्

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र० पु०	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
म० पु०	दास्यसे	दास्येथे	दास्यध्वे
उ० पु०	दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे

(४) दिवादिगण

मन्—समझना

लट्

प्र० पु०	मन्यते	मन्येते	मन्यन्ते
म० पु०	मन्यसे	मन्येथे	मन्यध्वे
उ० पु०	मन्ये	मन्यावहे	मन्यामहे

लोट्

प्र० पु०	मन्यताम्	मन्येताम्	मन्यन्ताम्
म० पु०	मन्यस्व	मन्येथाम्	मन्यध्वम्
उ० पु०	मन्यै	मन्यावहै	मन्यामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	मन्येत	मन्येयाताम्	मन्येरन्
म० पु०	मन्येथा.	मन्येयाथाम्	मन्येध्वम्
उ० पु०	मन्येय	मन्येवहि	मन्येमहि

लङ्

प्र० पु०	अमन्यत	अमन्येताम्	अमन्यन्त
म० पु०	अमन्यथाः	अमन्येथाम्	अमन्यध्वम्
उ० पु०	अमन्ये	अमन्यावहि	अमन्नामहि

लृट्

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र० पु०	मंस्यते	मस्येते	मस्यन्ते
म० पु०	मंस्यसे	मंस्येथे	मंस्यध्वे
उ० पु०	मंस्ये	मंस्यावहे	मंस्यामहे

(५) स्वादिगण

वृ—वरना

लट्

प्र० पु०	वृणुते	वृण्वाते	वृण्वते
म० पु०	वृणुषे	वृण्वाथे	वृणुध्वे
उ० पु०	वृण्वे	वृणुवहे, वृण्वहे,	वृणुमहे, वृण्महे

लोट्

प्र० पु०	वृणुताम्	वृण्वाताम्	वृण्वताम्
म० पु०	वृणुष्व	वृण्वाथाम्	वृणुध्वम्
उ० पु०	वृणवै	वृणवावहै	वृणवामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	वृण्वीत	वृण्वीयाताम्	वृण्वीरन्
म० पु०	वृण्वीथाः	वृण्वीयाथाम्	वृण्वीध्वम्
उ० पु०	वृण्वीय	वृण्वीवहि	वृण्वीमहि

लङ्

प्र० पु०	अवृणुत	अवृण्वाताम्	अवृण्वत
म० पु०	अवृणुथाः	अवृण्वाथाम्	अवृणुध्वम्
उ० पु०	अवृण्वि	अवृणुवहि, अवृण्वहि	अवृणुमहि, अवृण्महि

लृट्

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र० पु०	वरिष्यते, वरीष्यते	वरिष्येते, वरीष्येते	वरिष्यन्ते, वरीष्यन्ते
म० पु०	वरिष्यसे, वरीष्यसे	वरिष्येथे, वरीष्येथे	वरिष्यध्वे, वरीष्यध्वे
उ० पु०	वरिष्ये, वरीष्ये	वरिष्यावहे, वरीष्यावहे	वरिष्यामहे, वरीष्यामहे

(६) तुदादिगण

मुच्—छोड़ना

लट्

प्र० पु०	मुन्चते	मुन्चेते	मुन्चन्ते
म० पु०	मुञ्चसे	मुन्चेथे	मुन्चध्वे
उ० पु०	मुन्चे	मुन्चावहे	मुन्चामहे

लोट्

प्र० पु०	मुन्चताम्	मुन्चेताम्	मुन्चन्ताम्
म० पु०	मुन्चस्व	मुन्चेथाम्	मुञ्चध्वम्
उ० पु०	मुन्चै	मुञ्चावहै	मुञ्चामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	मुन्चेत	मुन्चेयाताम्	मुन्चेरन्
म० पु०	मुन्चेथाः	मुन्चेयाथाम्	मुन्चेध्वम्
उ० पु०	मुन्चेय	मुन्चेवहि	मुन्चेमहि

लङ्

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र० पु०	अमुञ्चत	अमुञ्चेताम्	अमुञ्चन्त
म० पु०	अमुञ्चथाः	अमुञ्चेथाम्	अमुञ्चध्वम्
उ० पु०	अमुञ्चे	अमुञ्चावहि	अमुञ्चामहि

लृट्

प्र० पु०	मोक्ष्यते	मोक्ष्येते	मोक्ष्यन्ते
म० पु०	मोक्ष्यसे	मोक्ष्येथे	मोक्ष्यध्वे
उ० पु०	मोक्ष्ये	मोक्ष्यावहे	मोक्ष्यामहे

(७) रुधादिगण

भुज्—भोजन करना

लट्

प्र० पु०	भुङ्क्ते	भुञ्जाते	भुञ्जते
म० पु०	भुङ्क्षे	भुञ्जाथे	भुङ्ग्ध्वे
उ० पु०	भुन्जे	भुन्ज्वहे	भुन्ज्महे

लोट्

प्र० पु०	भुङ्क्ताम्	भुञ्जाताम्	भुञ्जताम्
म० पु०	भुङ्क्ष्व	भुञ्जाथाम्	भुङ्ग्ध्वम्
उ० पु०	भुनजै	भुनजावहै	भुनजामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	भुञ्जीत	भुञ्जीयाताम्	भुञ्जीरन्
म० पु०	भुञ्जीथाः	भुञ्जीयाथाम्	भुञ्जीध्वम्
उ० पु०	भुञ्जीय	भुञ्जीवहि	भुञ्जीमहि

लङ्

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र० पु०	अभुङ्क्त	अभुञ्जाताम्	अभुञ्जत
म० पु०	अभुङ्क्था:	अभुञ्जाथाम्	अभुङ्ग्ध्वम्
उ० पु०	अभुञ्जि	अभुञ्ज्वहि	अभुञ्ज्महि

लृट्

प्र० पु०	भोक्ष्यते	भोक्ष्येते	भोक्ष्यन्ते
म० पु०	भोक्ष्यसे	भोक्ष्येथे	भोक्ष्यध्वे
उ० पु०	भोक्ष्ये	भोक्ष्यावहे	भोक्ष्यामहे

(८) तनादिगण

कृ—करना

लट्

प्र० पु०	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
म० पु०	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
उ० पु०	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

लोट्

प्र० पु०	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
म० पु०	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
उ० पु०	करवै	करवावहै	करवामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
म० पु०	कुर्वीथा:	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
उ० पु०	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि

लङ्

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र० पु०	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
म० पु०	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
उ० पु०	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

लृट्

प्र० पु०	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
म० पु०	करिष्यसे	करिष्येथे	करिष्यध्वे
उ० पु०	करिष्ये	करिष्यावहे	करिष्यामहे

(९) क्र्यादिगण

ग्रह्—लेना

लट्

प्र० पु०	गृह्णीते	गृह्णाते	गृह्णते
म० पु०	गृह्णीषे	गृह्णाथे	गृह्णीध्वे
उ० पु०	गृह्णे	गृह्णीवहे	गृह्णीमहे

लोट्

प्र० पु०	गृह्णीताम्	गृह्णाताम्	गृह्णताम्
म० पु०	गृह्णीष्व	गृह्णाथाम्	गृह्णीध्वम्
उ० पु०	गृह्णै	गृह्णावहै	गृह्णामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	गृह्णीत	गृह्णीयाताम्	गृह्णीरन्
म० पु०	गृह्णीथाः	गृह्णीयाथाम्	गृह्णीध्वम्
उ० पु०	गृह्णीय	गृह्णीवहि	गृह्णीमहि

लङ्

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र० पु०	अगृह्णीत	अगृह्णाताम्	अगृह्णत
म० पु०	अगृह्णीथा	अगृह्णाथाम्	अगृह्णीध्वम्
उ० पु०	अगृह्णि	अगृह्णीवहि	अगृह्णीमहि

लृट्

प्र० पु०	ग्रहीष्यते	ग्रहीष्येते	ग्रहीष्यन्ते
म० पु०	ग्रहीष्यसे	ग्रहीष्येथे	ग्रहीष्यध्वे
उ० पु०	ग्रहीष्ये	ग्रहीष्यावहे	ग्रहीष्यामहे

(१०) चुरादिगण

अर्थ—माँगना

लट्

प्र० पु०	अर्थयते	अर्थयेते	अर्थयन्ते
म० पु०	अर्थयसे	अर्थयेथे	अर्थयध्वे
उ० पु०	अर्थये	अर्थयावहे	अर्थयामहे

लोट्

प्र० पु०	अर्थयताम्	अर्थयेताम्	अर्थयन्ताम्
म० पु०	अर्थयस्व	अर्थयेथाम्	अर्थयध्वम्
उ० पु०	अर्थयै	अर्थयावहै	अर्थयामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	अर्थयेत	अर्थयेयाताम्	अर्थयेरन्
म० पु०	अर्थयेथा.	अर्थयेयाथाम्	अर्थयेध्वम्
उ० पु०	अर्थयेय	अर्थयेवहि	अर्थयेमहि

लङ्

		एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	पु०	आर्थयत	आर्थयेताम्	आर्थयन्त
म०	पु०	आर्थयथाः	आर्थयेथाम्	आर्थयध्वम्
उ०	पु०	आर्थये	आर्थयावहि	आर्थयामहि

लृट्

प्र०	पु०	अर्थयिष्यते	अर्थयिष्येते	अर्थयिष्यन्ते
म०	पु०	अर्थयिष्यसे	अर्थयिष्येथे	अर्थयिष्यध्वे
उ०	पु०	अर्थयिष्ये	अर्थयिष्यावहे	अर्थयिष्यामहे
